॥ श्रीहरिः ॥

1985

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीलिङ्गमहापुराण

[सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित]

गीताप्रेस गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

1985

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीलिङ्गमहापुराण

[सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सम्पादकीय निवेदन

पुराण भारतीय सनातन संस्कृतिकी अमूल्य निधि हैं। ये अनन्त ज्ञानराशिके भण्डार हैं। पुराणोंमें वेदोंके अर्थोंका उपबृंहण—विस्तार हुआ है, अतः इनकी वेदवत् प्रतिष्ठा है, वेदवत् प्रामाण्य है। पुराणोंको पंचम वेद कहा गया है—'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते' (श्रीमद्भागवत १।४।२०)। पुराणोंकी महिमामें कहा गया है कि जो बातें वेदोंमें प्राप्त नहीं होतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं। इसीलिये पुराणोंके श्रवण एवं पठनका विशेष माहात्म्य है। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

वेद प्रभुसम्मित वचन हैं, किंतु पुराण सुहृत्सम्मित हैं, पुराण आज्ञा नहीं देते, अपितु सच्चे मित्रकी भाँति कल्याणकारी बातोंका सत्परामर्श प्रदान करते हैं। पुराणोंका यह अपूर्व वैशिष्ट्य है कि इसमें वेदोंके गूढ़तम अर्थोंको आख्यान-शैलीमें कथानकके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है। अतः रोचक होनेसे ये अधिक सुगम एवं सहज ग्राह्य हैं, यथा—वेदोंमें 'सत्यं वद'—सत्य बोलोका उपदेश है। पुराणमें इसी उपदेशको महाराज हरिश्चन्द्रके आख्यानके माध्यमसे समझाया गया है, इसी कारण पुराणोंको विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। पुराणोंमें न केवल मानवमात्रके कल्याणकी बातें आयी हैं, अपितु जीवमात्रके कल्याणकी बातें हैं। वास्तवमें पुराण सच्चे अर्थोंमें पारमार्थिक कल्याणके सर्वोत्कृष्ट साधन हैं।

पुराण संख्यामें अठारह हैं, जो श्रीमद्भागवत, श्रीदेवीभागवत, विष्णुपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन्हीं अठारह महापुराणोंमें श्रीलिङ्गमहापुराणका भी परिगणन है। अन्य महापुराणोंके समान ही सर्गादि पंचलक्षणोंका निरूपण, भक्ति, ज्ञान, सदाचारकी महिमा तथा जीवका श्रेयः-सम्पादन और उसे भगवन्मार्गमें प्रतिष्ठित करा देना लिङ्गमहापुराणका तात्पर्य-विषयीभूत अर्थ है। श्रीहरिके पुराणमय विग्रहमें लिङ्गपुराणको भगवान्‌का गुल्फदेश माना गया है—'लैङ्गं तु गुल्फकम्।' (पद्मपुराण)

इस पुराणका यह नाम इसलिये दिया गया है कि इसमें परमात्मा परमशिवको लिङ्गी—निर्गुण-निराकार अर्थात् अलिङ्ग कहा गया है। यह परमात्मा अव्यक्त प्रकृतिका मूल है, लिङ्गका अर्थ है अव्यक्त अर्थात् प्रकृति—'अलिङ्गं लिङ्गमूलं तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते।' (लिङ्गपुराण पू० १।३।१) 'लिङ्ग' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—सबको अपनेमें लीन रखनेवाला या विश्वके सभी प्राणि-पदार्थोंका उद्भावक, परिचायक चिह्न अथवा सम्पूर्ण विश्वमय परमात्मा—'लयनाल्लिङ्गमुच्यते।' (लिङ्गपुराण पू० १।१९।१६) प्रकृति-पुरुषात्मक समग्र विश्वरूपी वेदी या वेर तो महादेवी पार्वती हैं और लिङ्ग साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है—'लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।' लिङ्गसे लिङ्गीका ख्यापन ही लिङ्गमहापुराणका विषय है। इसी विषय-वस्तुका प्रतिपादन लिङ्गपुराणमें विस्तारसे विविधरूपोंमें हुआ है।

लिङ्गपुराण दो भागोंमें विभक्त है—पूर्वभागमें एक सौ आठ अध्याय हैं और उत्तरभागमें पचपन अध्याय हैं। इसके पूर्वभागमें माहेश्वरयोगका प्रतिपादन, सदाशिवके ध्यानका स्वरूप, योगसाधना, भगवान् शिवकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन, भक्तियोगका माहात्म्य, भगवान् शिवके सद्योजात, वामदेव आदि अवतारोंकी कथा, ज्योतिर्लिङ्गके प्रादुर्भावका आख्यान, अट्ठाईस व्यासों तथा अट्ठाईस शिवावतारोंकी कथा, लिङ्गार्चन-विधि तथा लिङ्गाभिषेककी महिमा, भस्म एवं रुद्राक्ष-

धारणकी महिमा, शिलादपुत्र नन्दीश्वरके आविर्भावका आख्यान, भुवनसन्निवेश, ज्योतिश्चक्रका स्वरूप, सूर्य-चन्द्रवंश-वर्णन, शिवभक्ततण्डीप्रोक्त शिवसहस्रनामस्तोत्र, शिवके निर्गुण एवं सगुण स्वरूपका निरूपण, शिवपूजाकी महिमा, पाशुपतव्रतका उपदेश, सदाचार, शौचाचार, द्रव्यशुद्धि एवं अशौच-निरूपण, अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य, दक्षपुत्री सती एवं हिमाद्रिजा पार्वतीका आख्यान, भगवान् शिव एवं पार्वतीके विवाहकी मांगलिक कथा तथा शिवभक्त उपमन्युकी शिवनिष्ठा आदि विषयोंका वर्णन है।

उत्तरभागमें भगवद्गुणगानकी महिमा, विष्णुभक्तोंके लक्षण, लक्ष्मी एवं अलक्ष्मी (दरिद्रा)-के प्रादुर्भावका रोचक वृत्तान्त, दरिद्राके निवासयोग्य स्थान, द्वादशाक्षर मन्त्रकी महिमा, पशुपाशविमोचन, भगवान् शिव एवं पार्वतीकी विभूतियोंका निदर्शन, शिवकी अष्टमूर्तियोंकी कथा, शिवाराधना, शिवदीक्षा-विधान, तुलापुरुष आदि षोडश महादानोंकी विधि, जीवच्छ्राद्धका माहात्म्य तथा मृत्युंजय-मन्त्र-विधान आदि विषय विवेचित हैं। अन्तमें लिङ्गमहापुराणके श्रवण-मनन एवं पाठकी फलश्रुति निरूपित है। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी इस पुराणकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

'जो मनुष्य इस सम्पूर्ण लिङ्गपुराणको आदिसे अन्ततक पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा द्विजोंको सुनाता है, वह परमगति प्राप्त करता है। उस महात्माकी श्रद्धा मुझ (ब्रह्मा)-में, नारायणमें तथा भगवान् शिवमें हो जाती है।' 'लैङ्गमाद्यन्तमखिलं यः पठेच्छृणुयादपि॥ द्विजेभ्यः श्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम्। ××× मयि नारायणे देवे श्रद्धा चास्तु महात्मनः॥' (लिङ्गपुराण, उत्तर०, अ० ५५)

इस प्रकार सम्पूर्ण लिङ्गपुराण विशेष रूपसे शिवोपासनामें पर्यवसित है। इसमें भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णुका अभेदत्व प्रतिपादित हुआ है। इसमें आयी स्तुतियाँ अत्यन्त गेय तथा कण्ठ करने योग्य हैं। इसके आख्यान बड़े ही रोचक और भगवद्भक्तिको स्थिर करनेवाले हैं। इस पुराणमें सदाचारधर्मकी बड़ी प्रतिष्ठा वर्णित है और नित्यकर्मोंके सम्पादनकी बड़ी महिमा आयी है। इसमें आये सुभाषित बड़े ही ग्राह्य और कल्याणकारक हैं।

एक उपदेशमें बताया गया है कि सभी शास्त्रोंके बार-बार आलोडन तथा पुनः पुनः विचार करनेके बाद यही निश्चित होता है कि सदा नारायणका ध्यान करना चाहिये—'आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥ इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।' (उत्तरभाग ७। १०-११) इस प्रकार लिङ्गपुराण बहुत ही उपयोगी है तथा इसके उपदेश अत्यन्त उपकारक हैं।

पं० लक्ष्मीधरविरचित 'कृत्यकल्पतरु' नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध धर्मशास्त्रीय निबन्ध-ग्रन्थ है, उसमें लिङ्गपुराणके नामसे सोलह अध्याय प्राप्त हैं, जो वर्तमानमें उपलब्ध लिङ्गपुराणसे अतिरिक्त हैं, इन सोलह अध्यायोंमें अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य तथा यहाँके शिवायतनों एवं लिङ्गोंकी महिमा प्रतिपादित है। लिङ्गपुराण-परिशिष्टके नामसे उन्हें भी मूल तथा हिन्दी अनुवादके साथ इसमें दिया जा रहा है।

सम्पूर्ण श्रीलिङ्गमहापुराणका हिन्दी अनुवाद वर्ष २०१२ ई० के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। तभीसे सुधीजनोंकी यह भावना थी कि भाषा-टीकासहित मूल लिङ्गमहापुराणका भी प्रकाशन किया जाय। इसी दृष्टिसे मूल संस्कृत तथा उसका हिन्दी अनुवादके साथ पुस्तकरूपमें इसका प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है, प्रेमी पाठकोंको इससे प्रसन्नता होगी और वे लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः॥

श्रीलिङ्गमहापुराण-परिशिष्ट

[वाराणसी-माहात्म्य]

[धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थोंकी परम्परामें पं० लक्ष्मीधरभट्ट-विरचित 'कृत्यकल्पतरु' अत्यन्त प्राचीन, बहुश्रुत तथा अत्यधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसके प्रणेता पं० लक्ष्मीधर कान्यकुब्जनरेश गोविन्दचन्द्रके महामन्त्री थे। पं० लक्ष्मीधरका समय १२वीं शताब्दी है। परवर्ती निबन्धकारोंने कृत्यकल्पतरुके वचनोंको अपने ग्रन्थोंमें सादर उपन्यस्त किया है। चतुर्वर्गचिन्तामणि-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके प्रणेता 'हेमाद्रि' तो इस ग्रन्थ तथा पं० लक्ष्मीधरके वैदुष्यसे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने इन्हें 'भगवान्' शब्दसे सम्बोधित किया है।

'कृत्यकल्पतरु' धर्मशास्त्रीय कृत्योंके संग्रहका एक विशाल ग्रन्थ है। यह ब्रह्मचारिकाण्ड, गृहस्थकाण्ड, श्राद्धकाण्ड, दानकाण्ड, शुद्धिकाण्ड, व्यवहारकाण्ड, शान्तिकाण्ड, आचारकाण्ड तथा तीर्थविवेचनकाण्ड आदि कई काण्डोंमें विभक्त है। तत्तत् काण्डोंमें स्मृतियों तथा पुराणोंमें आये हुए धर्मशास्त्रीय विषयों जैसे—वर्णाश्रमधर्म, श्राद्ध, दान, प्रायश्चित्त, शान्ति, सदाचार तथा तीर्थविवेचन आदिका एक स्थानपर संग्रह हुआ है, इससे यह सौविध्य प्राप्त होता है कि एक ही स्थानपर विभिन्न स्मृतियों तथा पुराणादिमें उपन्यस्त तत्तद् विषयोंका संग्रह देखनेको मिल जाता है।

कृत्यकल्पतरुका तीर्थविवेचनकाण्ड प्रमुख तीर्थोंके माहात्म्यका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसमें मुख्यरूपसे वाराणसी, प्रयाग, गंगा, गया, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, मथुरा, उज्जयिनी, बदरिकाश्रम, द्वारका, केदार तथा नैमिषारण्य आदि तीर्थोंके माहात्म्य तथा तीर्थयात्रा आदिकी विधि विस्तारसे दी गयी है। इसमें अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका तथा यहाँके गुह्यायतनों, लिङ्गों, वापी, कुण्डों तथा ह्रदोंका जो वर्णन दिया गया है, वह विविध पुराणों आदिसे संग्रहीत है। विशेष बात यह है कि इस ग्रन्थमें लिङ्गपुराणके नामसे सोलह अध्यायोंमें लगभग दो हजार श्लोकोंमें वाराणसीका माहात्म्य उपलब्ध है, किंतु यह सामग्री वर्तमानमें उपलब्ध लिङ्गपुराणके संस्करणोंमें प्राप्त नहीं है। वर्तमानमें जो लिङ्गपुराण उपलब्ध होता है, वह पूर्वभाग तथा उत्तरभाग नामसे दो खण्डोंमें विभक्त है। इसके पूर्वभागके ९२वें अध्यायमें १९० श्लोकोंमें वाराणसी तथा यहाँके तीर्थोंका जो माहात्म्य आया है, वह पूर्वोक्त कृत्यकल्पतरुके संग्रहसे भिन्न है।

कृत्यकल्पतरु १२वीं शताब्दीका अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। उस समय लिङ्गपुराणका जो संस्करण उपलब्ध था, उसमेंसे ही ग्रन्थकारने सामग्री संगृहीत की होगी। लिङ्गपुराणकी श्लोकसंख्या स्वयं लिङ्गपुराणने तथा नारदादि पुराणोंने ग्यारह हजार बतायी है, परंतु वर्तमानमें लगभग आठ हजारके आस-पास श्लोक मिलते हैं। साथ ही लिङ्गपुराणके नामसे अरुणाचलमाहात्म्य, पंचाक्षरमाहात्म्य, रामसहस्रनाम तथा रुद्राक्षमाहात्म्य आदि प्रकरणोंका भी उल्लेख प्राप्त होता है, किंतु ये प्रकरण वर्तमान संस्करणोंमें अनुपलब्ध हैं। कालातिरेकसे वर्तमानमें पुराणोंके संस्करणोंमें कुछ परिवर्तन आ गया है। कई माहात्म्य तथा प्रकरण आदि ऐसे हैं, जो उन-उन पुराणोंके नामसे प्राप्त तो होते हैं, किंतु वर्तमानमें वे उस पुराणमें उपलब्ध नहीं होते। उदाहरणके लिये प्रसिद्ध सत्यनारायणकथाकी पुष्पिकामें 'इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे' यह मिलता है, किंतु यह कथा वर्तमानमें प्राप्त रेवाखण्डमें प्राप्त नहीं होती। प्रसिद्ध माघमाहात्म्य वायुपुराणके नामसे मिलता है, किंतु वायुपुराणमें नहीं मिलता। ऐसे ही अध्यात्मरामायणको ब्रह्माण्डपुराणका अंश माना जाता है, किंतु वर्तमान ब्रह्माण्डपुराणके संस्करणमें वह प्राप्त नहीं होता। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी समयमें पुराणादिका जो प्राचीन स्वरूप था, उसमें वह सब गुम्फित था। यही बात लिङ्गपुराणके वाराणसी-माहात्म्यके विषयमें भी है।

इस कृत्यकल्पतरुमें उद्धृत वाराणसी-माहात्म्य अत्यन्त महत्त्वका है, इसके अध्ययनसे प्राचीन समयके वाराणसीके लिङ्गायतनों एवं तीर्थोंके वास्तविक स्वरूपके विषयमें महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। काशीखण्ड आदिमें जो वाराणसीके विषयमें सामग्री उपलब्ध होती है, उससे भी विशिष्ट सामग्री इस प्राचीन लिङ्गमहापुराणमें

*मिलती है। अतः यह वर्णन बड़े महत्त्वका है। वहाँ वाराणसी-माहात्म्य-सम्बन्धी सामग्री कहीं स्फुट रूपमें तथा कहीं अध्यायोंमें उपनिबद्ध है, किंतु अध्यायोंमें श्लोकसंख्याका अंकन नहीं है। भगवान् शिव तथा देवी पार्वतीके प्रधान संवादके रूपमें उपलब्ध वह सामग्री तीसरे अध्यायसे अठारहवें अध्यायतक वहाँ दी गयी है, किंतु सुविधाकी दृष्टिसे तीसरे अध्यायको प्रथम अध्याय मानकर सम्पूर्ण सामग्री जिस रूपमें तथा जिस क्रममें कृत्यकल्पतरुमें उपलब्ध है, उसी रूपमें तथा उसी क्रममें श्लोक-संख्या अंकितकर मूल श्लोकोंसहित उसका हिन्दीभावानुवाद यहाँ दिया जा रहा है। इसे पढ़कर भगवद्भक्तों तथा श्रद्धालुजनोंमें भगवान् साम्बसदाशिवके प्रति विशेष श्रद्धा जाग्रत् होगी तथा आशा है कि सभी पाठक महानुभाव इससे लाभ उठायेंगे—***सम्पादक*** *]*

पहला अध्याय

अविमुक्तक्षेत्रकी महिमा और वहाँ स्थित लिङ्गायतनोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि उपायज्ञानसाधनम्।
यानि तीर्थानि चोक्तानि व्योमतन्त्रे पुरा मया॥ १
तेषामध्यधिकं तीर्थमविमुक्तं महामुने।
सर्वतीर्थानि च मया तस्मिन् स्थाने प्रतिष्ठिताः॥ २
न कदाचिन्मया मुक्तं स्थानं च सततं मुने।
सर्वतीर्थमयं पुण्यं गुह्याद् गुह्यतरं महत्॥ ३
स्थानानां चैव सर्वेषामादिभूतं महेश्वरम्।
यत्र सिद्धिं परां प्राप्ता मुनयो मुनिसत्तम॥ ४
अनेनैव शरीरेण प्राप्ता निर्वाणमुत्तमम्।
तत्र चैव तु सम्भूतो ज्ञानं प्राप्नोति मानवः॥ ५
गच्छ वाराणसीं शीघ्रं यत्र देवः सनातनः।
देवताभिः समस्ताभिस्तत्र देवः पिनाकधृक्॥ ६
स्तूयते वरदो देवैर्ब्रह्मादिभिरभीक्ष्णशः।
तत्रासिर्वरणा चैव निम्नगे सिद्धसेविते॥ ७
बहुजन्माप्तपापानां दुष्टानां देहिनां भुवि।
क्षालनं कुरुते देवि सा नदी यत्र जाह्नवी॥ ८
या दृशा सर्वथा स्वर्गे सा नदीनां सरिद्वरा।
या माता सर्वभूतानां सा गङ्गा यत्र निम्नगा॥ ९
अविमुक्तं परं क्षेत्रं शङ्करस्य सदैव हि।
तत्र स्थानं प्रसिद्धं च त्रैलोक्ये शूलपाणिनः॥ १०
निम्नगाभ्यां पुरी सा च नाम्ना वाराणसी मुने।
कृतस्नानेन देवेन ओङ्कारे संस्थितेन वा।
तस्मिन् काले वरो दत्तो देवदेवेन शम्भुना॥ ११

ईश्वर बोले—हे महामुने! अब मैं आपको ज्ञानप्राप्तिका अन्य साधन बताऊँगा। मैंने पूर्वमें व्योमतन्त्रमें जिन तीर्थोंका वर्णन किया था, उन सबसे बढ़कर अविमुक्त तीर्थ है। मैंने समस्त तीर्थोंको उस [अविमुक्त] स्थानमें स्थापित कर दिया है॥ १-२॥

हे मुने! मैं यहाँ सतत स्थित रहता हूँ, मैंने कभी भी इस स्थानका त्याग नहीं किया; यह सभी तीर्थोंसे युक्त, पुण्यप्रद, गुह्यसे भी गुह्यतर तथा महान् है॥ ३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! महेश्वरका यह स्थान सभी स्थानोंके आदिमें प्रादुर्भूत हुआ, जहाँ मुनियोंने परम सिद्धि प्राप्त की और इसी शरीरसे उत्तम निर्वाण प्राप्त किया। वहाँपर उत्पन्न हुआ मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है॥ ४-५॥

आप शीघ्र वाराणसी जाइये, जहाँ सनातन देव [शिवजी] समस्त देवताओंके साथ विद्यमान हैं। ब्रह्मा आदि देवता वर प्रदान करनेवाले पिनाकधारी शिवकी वहाँ निरन्तर स्तुति करते हैं। वहाँ सिद्धोंके द्वारा सेवित 'असि' तथा 'वरणा' [नामक] दो नदियाँ हैं॥ ६-७॥

हे देवि! वहाँ गंगा नदी पृथ्वीतलपर दुष्ट प्राणियोंके अनेक जन्मोंके अर्जित पापोंका क्षालन करती हैं। जो सदा स्वर्गमें दृष्टिगत होती हैं तथा जो सभी प्राणियोंकी माता हैं, वे नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा नदी वहाँ विद्यमान हैं॥ ८-९॥

वहाँ शंकरजीका सदैव परम अविमुक्तक्षेत्र है, वह शूलपाणि शिवजीका तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध निवास-स्थान है। हे मुने! दोनों [वरणा तथा असि] नदियोंसे युक्त होनेके कारण वह पुरी 'वाराणसी' नामसे विख्यात है। स्नान करनेके अनन्तर ओंकारमें संस्थित देवदेव

देवदेव उवाच

ये स्मरिष्यन्ति तत्स्थानमविमुक्तं सदा नराः।
निर्द्धूतसर्वपापास्ते भविष्यन्ति गणोपमाः॥ १२

आगमिष्यन्ति ये द्रष्टुं ये जना योजनेन तु।
ते ब्रह्महत्यां मोक्ष्यन्ति भविष्यन्ति ममानुगाः॥ १३

विदित्वा भङ्गुरं लोकं येऽस्मिन्वत्स्यन्ति मे पुरे।
अन्तकालेऽपि वत्स्यन्ति तेषां भवति मोक्षदम्॥ १४

मोक्षः सुदुर्लभो यस्मात् संसारश्चातिभीषणः।
अश्मना चरणौ भित्त्वा वाराणस्यां वसेन्नरः॥ १५

सर्वावस्थोऽपि यो मर्त्यो वाराणस्यां वसेत्सदा।
स यां गतिमवाप्नोति पुण्यदानैर्न सा गतिः॥ १६

दुर्लभा तपसा सा च मर्त्यानां मुनिसत्तम।
तत्र विप्र व्रज शीघ्रं मनस्स्थैर्यं यदीच्छसि॥ १७

मनसः स्थैर्यहेतुत्वं शृणुष्व गदतो मम।
दक्षिणं चोत्तरं चैव तस्मिन् स्थाने स्थितं सदा॥ १८

विषुवं चैव मध्यस्थं देवानामपि दुर्लभम्।
कलौ युगे तु मर्त्यानां स्थानं मोक्षावहेतुकम्॥ १९

भक्तिमाराधनेनैव स्नानपूजनतर्पणैः।
चातुर्वर्ण्यविभागस्य शरीरं वैश्वरं पदम्॥ २०

पिङ्गला नाम या नाडी आग्नेयी सा प्रकीर्तिता।
शुष्का सरिच्च सा ज्ञेया लोलार्को यत्र तिष्ठति॥ २१

इडानाम्नी च या नाडी सा सौम्या सम्प्रकीर्तिता।
वरणा नाम सा ज्ञेया केशवो यत्र संस्थितः॥ २२

आभ्यां मध्ये तु या नाडी सुषुम्ना च प्रकीर्तिता।
मत्स्योदरी च सा ज्ञेया विषुवं तत्प्रकीर्तितम्॥ २३

भगवान् शम्भुने उस समय इस प्रकार वर प्रदान किया था॥ १०-११॥

देवदेव बोले—जो मनुष्य उस अविमुक्त स्थानका सदा स्मरण करेंगे, वे सभी पापोंसे मुक्त हो जायँगे और मेरे गणोंके तुल्य हो जायँगे॥ १२॥

जो लोग मेरा दर्शन करनेके लिये [यहाँ] आयेंगे, वे एक योजन दूर रहनेपर ही ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जायेंगे और मेरे अनुचर बन जायेंगे॥ १३॥

संसारको विनाशशील जानकर जो लोग मेरे इस पुरमें निवास करेंगे अथवा मृत्युके समय ही [यहाँ] निवास करेंगे, उनके लिये यह मोक्षप्रद होगा॥ १४॥

चूँकि मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है और संसार अति भयंकर है, अतः पत्थरसे [अपने] दोनों पैरोंको भंग करके मनुष्यको वाराणसीमें निवास करना चाहिये॥ १५॥

किसी भी अवस्थावाला जो मनुष्य सदा वाराणसीमें निवास करता है, वह जो गति प्राप्त करता है, वह गति पुण्य तथा दानोंसे भी सम्भव नहीं है। हे मुनिश्रेष्ठ! वह [गति] मनुष्योंके लिये तपस्यासे भी परम दुर्लभ है॥ १६१/२॥

अतः हे विप्र! यदि आप मनकी स्थिरता [शान्ति] चाहते हैं, तो शीघ्र ही वहाँ जाइये; [वहाँ जानेसे] मनकी स्थिरताका कारण सुनिये; मैं बता रहा हूँ॥ १७१/२॥

उस पुरमें दक्षिण तथा उत्तर स्थान स्थित हैं; उसके मध्यमें विषुवक्षेत्र स्थित है, जो देवताओंको भी दुर्लभ है। कलियुगमें तो यह स्थान मनुष्योंके लिये मोक्षका साधनस्वरूप है; आराधना, स्नान, पूजन तथा तर्पणके द्वारा यहाँ [शिवकी] भक्ति करनी चाहिये। चारों वर्णोंमेंसे कोई भी व्यक्ति यहाँ इस ईश्वरपदको प्राप्त कर लेता है॥ १८—२०॥

पिंगला नामक जो नाडी है, वह आग्नेयी कही गयी है; उसे शुष्क सरित् (नदी) जानना चाहिये, जहाँ लोलार्क-कुण्ड स्थित है॥ २१॥

इडा नामक जो नाडी है, वह सौम्य कही गयी है; उसे वरणा नामवाली जानना चाहिये, जहाँ केशव विराजमान हैं। इन दोनों [पिंगला, इडा]-के मध्यमें जो नाडी है, वह सुषुम्ना कही गयी है; उसे मत्स्योदरी नामवाली जानना चाहिये, उसे विषुव कहा गया है॥ २२-२३॥

श्रुत्वा कलियुगं घोरमल्पायुषमधार्मिकम्।
सिद्धक्षेत्रं न सेवन्ते जायन्ते च म्रियन्ति च॥ २४

लिङ्गरूपधरास्तीर्थे दृगिचण्डेश्वरादयः।
अविमुक्ते स्थिताः सर्वे शुद्ध्यन्ते पापकर्मिणः॥ २५

कलियुगको भयंकर, अल्पायु तथा अधार्मिक समझकर भी जो लोग इस सिद्धक्षेत्रका सेवन नहीं करते हैं, वे ही बार-बार जन्म लेते हैं और मृत्युको प्राप्त होते हैं। लिङ्गरूपधारी दृगिचण्डेश्वर आदि इस अविमुक्त तीर्थमें स्थित रहते हैं; पापकर्म करनेवाले सभी लोग यहाँ शुद्ध हो जाते हैं॥ २४-२५॥

अविमुक्तं परं क्षेत्रमविमुक्ते परा गतिः।
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परं पदम्॥ २६

अविमुक्त परम क्षेत्र है; [इस] अविमुक्तक्षेत्रमें परा गति प्राप्त होती है, अविमुक्तक्षेत्रमें परा सिद्धि मिलती है और अविमुक्तक्षेत्रमें परमपद प्राप्त होता है॥ २६॥

अन्तकाले मनुष्याणां भिद्यमानेषु मर्मसु।
वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिर्नैवोपजायते॥ २७

मृत्युके समय मर्मोंके भेदे जानेपर वायुके द्वारा प्रेरित किये गये मनुष्योंको स्मृति नहीं रह जाती है॥ २७॥

येऽविमुक्ते स्थिता रुद्रा भक्तानां प्रीतिदायकाः।
कर्णजापं प्रयच्छन्ति दृगिचण्डेश्वरादयः॥ २८

भक्तोंको प्रीति प्रदान करनेवाले जो दृगिचण्डेश्वर आदि रुद्र अविमुक्तमें स्थित हैं, वे [भक्तोंके] कानमें तारक मन्त्र प्रदान करते हैं॥ २८॥

अविमुक्तं महत्क्षेत्रं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्।
सर्वपापक्षयकरं साक्षाच्छिवपुरं महत्॥ २९

श्मशानं परमं विद्धि क्षेत्राणां परमं तथा।
पाप्मानमुत्सृजत्याशु प्रविष्टस्तत्र वै पुमान्॥ ३०

अविमुक्तक्षेत्र महान्, पुण्य करनेवालोंके द्वारा सेवित, सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा साक्षात् शिवका महान् पुर है। श्मशानको परम क्षेत्र जानिये; यह सभी क्षेत्रोंमें महान् है। वहाँ प्रविष्ट हुआ मनुष्य शीघ्र ही पापसे मुक्त हो जाता है॥ २९-३०॥

वाराणस्यां तु यः कश्चित् प्रविष्टो ब्रह्मघातकः।
तिष्ठते क्षेत्रबाह्ये तु निर्गते गृह्यते पुनः॥ ३१

जो कोई भी ब्रह्मघाती वाराणसीमें प्रवेश करता है, तो उसी समय उसकी ब्रह्महत्या क्षेत्रके बाहर ही रह जाती है और पुनः उस व्यक्तिके इस क्षेत्रसे बाहर चले जानेपर वह ब्रह्महत्या उसे पुनः घेर लेती है॥ ३१॥

लिङ्गरूपधरा मूर्ताः सप्तकोट्यस्तु सर्वतः।
अविमुक्ते स्थिता रुद्रा भक्तानां सिद्धिदायकाः॥ ३२

लिङ्गरूप धारण किये हुए मूर्तिमान् सात करोड़ रुद्र अविमुक्तक्षेत्रमें सभी ओर स्थित हैं; वे भक्तोंको सिद्धि देनेवाले हैं॥ ३२॥

कृत्तिवाससमारभ्य क्रोशं क्रोशं चतुर्दिशम्।
योजनं तत्र तत्क्षेत्रं गणै रुद्रैश्च संवृतम्॥ ३३

तस्य मध्ये यदा लिङ्गं भूमिं भित्त्वा समुत्थितम्।
मध्यमेश्वरनामाख्यं ख्यातं सर्वसुरासुरैः॥ ३४

कृत्तिवाससे आरम्भ करके कोस-कोसकी दूरीपर चारों दिशाओंमें योजन-परिमाणमें वह क्षेत्र गणों तथा रुद्रोंसे घिरा हुआ है। उसके मध्यमें भूमिका भेदन करके जो लिङ्ग प्रकट हुआ है, उसे सभी देवता तथा असुर मध्यमेश्वर नामवाला कहते हैं॥ ३३-३४॥

अस्मादारभ्य लिङ्गात्तु क्रोशं क्रोशं चतुर्ष्वपि।
योजनं विद्धि तत्क्षेत्रं मृत्युकालेऽमृतप्रदम्॥ ३५

एवं क्षेत्रस्य संन्यासः पुराणे परिकीर्तितः।
अस्मात्तु परतो देवि विहारो नैव विद्यते॥ ३६

इस लिङ्गसे आरम्भ करके चारों दिशाओंमें कोस-कोसकी दूरीपर योजनभर उस [अविमुक्त] क्षेत्रको जानिये; वह क्षेत्र मृत्युकालमें अमरता प्रदान करनेवाला है। इस प्रकार पुराणमें इस क्षेत्रका माहात्म्य बताया गया है; हे देवि! इस क्षेत्रसे बढ़कर [कोई भी] आनन्दका स्थान नहीं है॥ ३५-३६॥

देव्युवाच

वाराणस्यां तु किं गुह्यं स्थानं किं च तव प्रियम्।
किं रहस्यं च लिङ्गानां के ह्रदास्तत्र विश्रुताः॥ ३७

के कूपाः कानि कुण्डानि लिङ्गानां स्थापकाश्च के।
कस्मिन् स्थाने कृतं कर्म ज्ञाननिष्ठं प्रजायते।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं यदनुग्रहभागहम्॥ ३८

देवदेव उवाच

रुचिरं स्थानमासाद्य अविमुक्तं तु मे गृहम्।
न कदाचिन्मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम्॥ ३९

अनेनैव प्रकारेण अविमुक्तं तु कथ्यते।
अविशब्देन पापं तु कथ्यते वेदवादिभिः।
तेन पापेन तत् क्षेत्रं वर्जितं वरवर्णिनि॥ ४०

सिद्धाः पाशुपताः श्रेष्ठास्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
उपासते च मां नित्यं तस्मिन् स्थाने स्थिताः सदा॥ ४१

पूर्वोत्तरे दिग्विभागे तस्मिन् क्षेत्रे तु सुन्दरि।
सुरासुरैः स्तुतश्चाहं तत्र स्थाने यशस्विनि॥ ४२

दिव्यं वर्षसहस्रं तु स्तुतोऽहं विविधैः स्तवैः।
उत्पन्नं मम लिङ्गं तु भित्त्वा भूमिं यशस्विनि॥ ४३

तेषामनुग्रहार्थाय लोकानां भक्तिभावतः।
वाराणस्यां महादेवि तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्॥ ४४

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि पशुपाशैर्विमुच्यते॥ ४५

कूपस्तत्रैव संल्लग्नो महादेवस्य चैव हि।
तत्रोपस्पर्शनाद्देवि लभेद्वागीश्वरीं गतिम्॥ ४६

तत्र वाराणसी देवी स्थिता विग्रहरूपिणी।
मानवानां हितार्थाय स्थिता कूपस्य पश्चिमे॥ ४७

वाराणसीं तु यो दृष्ट्वा भक्त्या चैव नमस्यति।
तस्य तुष्टा च सा देवी वसतिं च प्रयच्छति॥ ४८

महादेवस्य पूर्वेण गोप्रेक्षमिति विश्रुतम्।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि पूर्वोक्तं फलमाप्नुयात्॥ ४९

देवी बोलीं—वाराणसीमें कौन-सा गुह्य स्थान है, कौन-सा स्थान आपको प्रिय है, लिङ्गोंका क्या रहस्य है, वहाँ कौन-से प्रसिद्ध सरोवर हैं, कौन-कौन कूप हैं, कौन-कौन कुण्ड हैं, लिङ्गोंके स्थापक कौन हैं और किस स्थानमें किया गया कर्म ज्ञानमें निष्ठा उत्पन्न करनेवाला होता है? यदि मैं अनुग्रहकी भागिनी होऊँ, तो मुझे यह सब बतायें॥ ३७—३८॥

देवदेव बोले—मैंने इस सुन्दर अविमुक्तक्षेत्रको प्राप्तकर इसे अपना गृह (निवासस्थान) बनाया। मैंने कभी भी इसका त्याग नहीं किया, इसलिये इसे अविमुक्त कहा गया है। वेदवादियोंके द्वारा 'अवि' शब्दसे पापको कहा जाता है। हे वरवर्णिनि! वह क्षेत्र उस पापसे रहित है; इस प्रकारसे यह अविमुक्त कहा जाता है॥ ३९-४०॥

सिद्धजन तथा श्रेष्ठ पाशुपत भक्त मेरे प्रति निष्ठावान् तथा परायण होकर उस स्थानमें रहकर नित्य मेरी उपासना करते हैं॥ ४१॥

हे सुन्दरि! उस क्षेत्रमें पूर्वोत्तर दिशामें देवताओं तथा असुरोंके द्वारा मेरी स्तुति की गयी थी। हे यशस्विनि! उस स्थानमें दिव्य हजार वर्षोंतक अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति की गयी थी; तब हे यशस्विनि! उन सभीके भक्तिभावसे प्रसन्न होकर उनपर अनुग्रह करनेहेतु भूमिका भेदन करके मेरा लिङ्ग प्रकट हुआ और हे महादेवि! वाराणसीमें उस स्थानपर मैं स्थित हो गया। हे देवि! उस लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ४२—४५॥

हे देवि! वहींपर महादेवके समीप एक कूप है; वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य वागीश्वरी गति (सारस्वतलोक) प्राप्त करता है॥ ४६॥

वहाँपर कूपके पश्चिमभागमें मनुष्योंके कल्याणके लिये विग्रहरूप धारणकर देवी वाराणसी विराजमान हैं॥ ४७॥

[देवी] वाराणसीका दर्शन करके जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार करता है, उसके ऊपर प्रसन्न होकर वे देवी उसे काशीवास प्रदान करती हैं॥ ४८॥

हे सुश्रोणि! महादेवके पूर्वमें गोप्रेक्ष नामक स्थान प्रसिद्ध है, जिसके दर्शनसे मनुष्य पूर्वोक्त फल प्राप्त

ईश्वर उवाच

गोप्रेक्षस्योत्तरेणाथ अनसूयाख्यलिङ्गकम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि गतिं च लभते पराम्॥ ५०

पश्चान्मुखं च तल्लिङ्गमनसूयाप्रतिष्ठितम्।
अनसूयेश्वरस्याग्रे गणेश्वरमिति स्मृतम्॥ ५१

तेन दृष्टेन लभते गणेशस्य सलोकताम्।
गणेश्वरात् पश्चिमेन हिरण्यकशिपुः पुरा॥ ५२

स्थापयामास मे लिङ्गं कूपस्यैव समीपतः।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गं सिद्धेश्वरं स्मृतम्॥ ५३

दर्शनादेव मे लिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
अन्यदायतनं भद्रे शृणुष्व गदतो मम॥ ५४

वृषभेश्वरनामानं लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति।
पूर्वामुखं महेशानि गोप्रेक्षस्य तु नैर्ऋते।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि अभीष्टं फलमाप्नुयात्॥ ५५

गोप्रेक्षस्य दक्षिणतः स्थापितं लिङ्गमुत्तमम्।
दधीचेश्वरनामानं सर्वकामफलप्रदम्॥ ५६

दधीचेश्वरसामीप्ये दक्षिणे वरवर्णिनि।
अत्रिणा स्थापितं लिङ्गं दैवमार्तिहरं शुभम्॥ ५७

अत्रीश्वराद्दक्षिणतः सूर्यखण्डमुखेऽपि च।
मधुकैटभाभ्यां सुश्रोणि लिङ्गसंस्थापनं कृतम्॥ ५८

तत्र पश्चान्मुखो देवि विसमन्थाः प्रपठ्यते।
पूर्वामुखं कैटभस्य लिङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ५९

गोप्रेक्षकस्य पूर्वेण लिङ्गं वै बालकेश्वरम्।
बालकेश्वरसामीप्ये विज्वरेश्वरसंज्ञितम्॥ ६०

तेन दृष्टेन सुश्रोणि ज्वरो नश्यति तत्क्षणात्।
विज्वरेश्वरपूर्वेण वेदेश्वरमिति श्रुतम्॥ ६१

ईशानाभिमुखं लिङ्गं कोणे तस्य मुखानि वै।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि चतुर्वेदो भवेद्द्विजः॥ ६२

करता है अर्थात् भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ४९॥

ईश्वर बोले—हे देवि! गोप्रेक्षके उत्तरमें अनसूया नामक लिङ्ग है; उसका दर्शन करके मनुष्य परा गतिको प्राप्त करता है। पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग [देवी] अनसूयाके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ५०१/२॥

अनसूयेश्वर-लिङ्गके आगे गणेश्वर [लिङ्ग] बताया गया है, उसके दर्शनसे मनुष्य गणेशजीका सालोक्य प्राप्त करता है॥ ५११/२॥

हिरण्यकशिपुने पूर्वकालमें गणेश्वरके पश्चिममें कूपके पासमें ही मेरे लिङ्गकी स्थापना की थी। हे देवि! उसीके पश्चिममें सिद्धेश्वरलिङ्ग बताया गया है; दर्शन-मात्रसे मेरा वह लिङ्ग सर्वसिद्धि प्रदान करनेवाला है॥ ५२-५३१/२॥

हे भद्रे! अन्य आयतन (लिङ्ग)-के विषयमें सुनिये; मैं बता रहा हूँ। हे महेशानि! वहींपर वृषभेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, जो पूर्वकी ओर मुखवाला है तथा गोप्रेक्षके नैर्ऋत (दक्षिण-पश्चिम)-में स्थित है। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य अभीष्ट फल प्राप्त करता है॥ ५४-५५॥

गोप्रेक्षके दक्षिणमें सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला दधीचेश्वर नामक उत्तम लिङ्ग स्थापित है॥ ५६॥

हे वरवर्णिनि! दधीचेश्वरलिङ्गके समीपमें दक्षिण दिशामें [मुनि] अत्रिके द्वारा शिवजीका लिङ्ग स्थापित किया गया है; यह दैविक कष्टको दूर करनेवाला तथा मंगलकारक है॥ ५७॥

हे सुश्रोणि! अत्रीश्वरके दक्षिणमें सूर्यखण्डमुखमें भी मधु तथा कैटभके द्वारा लिङ्गकी स्थापना की गयी है। हे देवि! वहाँपर मधुके द्वारा स्थापित लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला कहा जाता है और कैटभके द्वारा स्थापित त्रिलोक-प्रसिद्ध लिङ्ग पूर्वकी ओर मुखवाला है॥ ५८-५९॥

गोप्रेक्षके पूर्वमें बालकेश्वरलिङ्ग है। बालकेश्वरके समीपमें विज्वरेश्वर नामक लिङ्ग है; हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे ज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है॥ ६०१/२॥

विज्वरेश्वरके पूर्वमें वेदेश्वर लिङ्ग है—ऐसा कहा गया है; वह लिङ्ग ईशानकी ओर मुखवाला है, उसके कोणमें [अनेक] मुख हैं। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे

वेदेश्वरस्योत्तरतः स्वयं तिष्ठति केशवः।
क्षेत्रस्य कारणं चास्य क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते॥ ६३
तेन दृष्टेन सुश्रोणि सर्वं दृष्टं चराचरम्।
तत्समीपे तु सुश्रोणि लिङ्गं मे सङ्गमेश्वरम्।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि शिष्टैः सह समागमः॥ ६४
सङ्गमेशस्य पूर्वेण लिङ्गं चैव चतुर्मुखम्।
ब्रह्मणा स्थापितं भद्रे प्रयागमिति कीर्त्यते॥ ६५
तेन दृष्टेन लभते ब्रह्मणः पदमुत्तमम्।
तत्र सा शाङ्करी देवी ब्रह्मवृक्षेऽवतिष्ठते॥ ६६
शान्तिं करोति सर्वेषां ये च तीर्थनिवासिनः।
अतः परं तु संवेद्यं गङ्गावरणसङ्गमम्॥ ६७
श्रवणद्वादशीयोगो बुधवारे यदा भवेत्।
तदा तस्मिन्नरः स्नात्वा सन्निहत्या फलं लभेत्॥ ६८
श्राद्धं कृत्वा तु यस्तत्र तस्मिन् काले यशस्विनि।
तारयित्वा पितॄन् सर्वान् विष्णुलोकं स गच्छति॥ ६९
वरणायास्तटे पूर्वे कुम्भीश्वरमिति स्मृतम्।
कुम्भीश्वरात्तु पूर्वेण कालेश्वरमिति स्मृतम्॥ ७०
कालेश्वरस्योत्तरतो महातीर्थं वरानने।
कपिलाह्रदनामानं ख्यातं सर्वसुरासुरैः॥ ७१
तस्मिन् ह्रदे तु यः स्नानं कुर्याद्भक्तिपरायणः।
वृषध्वजं च वै दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत्॥ ७२
नरकस्थास्ततो देवि पितरः सपितामहाः।
पितृलोकं प्राप्नुवन्ति तस्मिन् श्राद्धे कृते तु वै॥ ७३
गयायां चाष्टगुणितं पुण्यं प्रोक्तं महर्षिभिः।
तस्मिन् श्राद्धे कृते भद्रे पितॄणामनृणो भवेत्॥ ७४
पश्चिमे तु दिशाभागे महादेवस्य भामिनि।
स्कन्देन स्थापितं लिङ्गं मम भक्त्या सुरेश्वरि॥ ७५
तेन दृष्टेन गच्छन्ति स्कन्दस्यैव सलोकताम्।
तत्र शाखैर्विशाखैश्च नैगमीयैश्च सुन्दरि।
स्थापितानि च लिङ्गानि गणैः सर्वैर्बहूनि च॥ ७६

द्विज चारों वेदोंका ज्ञाता हो जाता है॥ ६१-६२॥

वेदेश्वरके उत्तरमें स्वयं केशव विराजमान हैं; वे इस क्षेत्रके कारणभूत क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। हे सुश्रोणि! उनके दर्शनसे समस्त चराचर [जगत्] दृष्टिगत हो जाता है॥ ६३ १/२॥

हे सुश्रोणि! उनके समीपमें मेरा संगमेश्वरलिङ्ग विद्यमान है; उसके दर्शनसे हे सुश्रोणि! सज्जनोंके साथ समागम होता है॥ ६४॥

संगमेश्वरके पूर्वमें चारमुखवाला लिङ्ग है; हे भद्रे! ब्रह्माके द्वारा स्थापित किया गया वह प्रयाग नामसे पुकारा जाता है। उसके दर्शनसे मनुष्य उत्तम ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। वहाँपर वे शांकरीदेवी ब्रह्मवृक्षमें विद्यमान हैं और जो लोग तीर्थमें निवास करनेवाले हैं, उन सबको वे शान्ति प्रदान करती हैं। इसके बाद गंगा तथा वरणाके संगमको जानना चाहिये॥ ६५—६७॥

जब बुधवारके दिन श्रवण-द्वादशीका योग उपस्थित हो, उस समय उसमें स्नान करके मनुष्य क्षेत्रसन्निधिका फल प्राप्त करता है। हे यशस्विनि! उस कालमें वहाँपर जो [मनुष्य] श्राद्ध करता है, वह समस्त पितरोंका उद्धार करके विष्णुलोक जाता है॥ ६८-६९॥

वरणाके पूर्व-तटपर कुम्भीश्वर [लिङ्ग] बताया गया है। कुम्भीश्वरके पूर्वमें कालेश्वर [लिङ्ग] कहा गया है। हे वरानने! कालेश्वरके उत्तरमें सभी देवताओं तथा असुरोंके द्वारा कपिलाह्रद नामक महातीर्थ कहा गया है। जो [मनुष्य] उस ह्रद (सरोवर)-में भक्ति-परायण होकर स्नान करता है और वृषध्वजका दर्शन करता है, वह राजसूय [यज्ञ]-का फल प्राप्त करता है॥ ७०—७२॥

हे देवि! वहाँ श्राद्ध किये जानेपर नरकमें स्थित पितामहसहित सभी पितर पितृलोक प्राप्त करते हैं। महर्षियोंने वहाँ किये गये श्राद्धको गयामें किये गये श्राद्धसे आठ गुना पुण्यप्रद बताया है। हे भद्रे! वहाँ श्राद्ध करनेपर मनुष्य पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है॥ ७३-७४॥

हे भामिनि! हे सुरेश्वरि! महादेवके पश्चिम दिशाभागमें स्कन्दने भक्तिपूर्वक मेरा लिङ्ग स्थापित किया है; उसके दर्शनसे लोग स्कन्दका सालोक्य प्राप्त करते हैं। हे सुन्दरि! वहाँ शाख, विशाख तथा नैगमीय—

स्कन्देश्वरस्योत्तरतो बलभद्रप्रतिष्ठितम्।
तेन दृष्टेन देवेशि अनन्तफलमाप्नुयात्॥ ७७

स्कन्देश्वराद्दक्षिणतो महालिङ्गं प्रतिष्ठितम्।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं स्थापितं नन्दिना पुरा॥ ७८

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि नन्दिलोकमवाप्नुयात्।
नन्दीश्वरात् पश्चिमतो लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ७९

स्वर्लीनसदृशं भद्रे नन्दिपित्रा प्रतिष्ठितम्।
शिलाक्षेश्वरनामानं सुरसङ्घैः प्रपूजितम्॥ ८०

अन्यत्तत्र तु विख्यातं हिरण्याक्षेश्वरं विभुम्।
हिरण्याक्षेण दैत्येन स्थापितं मम भक्तितः॥ ८१

हिरण्याख्यस्य सामीप्ये अन्यैर्देवैः सहस्रशः।
स्थापितानि च लिङ्गानि भक्त्या चैव फलार्थिभिः॥ ८२

अन्यद्वै देवदेवस्य स्थितं पश्चान्मुखं स्मृतम्।
तत्र स्थाने वरारोहे हिरण्याक्षस्य दक्षिणे॥ ८३

तेषां पश्चिमदिग्भागे अट्टहासं स्थितं शुभम्।
मुखं लिङ्गं तु तद्देवि पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ ८४

प्रसन्नवदने देवि सर्वपातकनाशकम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि ऐशानं लोकमाप्नुयात्॥ ८५

अट्टहाससमीपेन पश्चिमेन यशस्विनि।
मित्रावरुणनामानौ पूर्वद्वारे व्यवस्थितौ॥ ८६

मित्रावरुणलोकस्तु तयोः सन्दर्शनाद्भवेत्।
अन्यत्तत्रैव विख्यातं वसिष्ठेशमिति स्थितम्॥ ८७

स्थापितं तत्र तल्लिङ्गं याज्ञवल्क्येन वै पुरा।
चतुर्मुखं च तल्लिङ्गं सर्वपापक्षयकरम्॥ ८८

अन्यत्तत्रैव संलग्नं मैत्रेय्या स्थापितं शुभम्।
तेन दृष्टेन लभते परं ज्ञानं सुदुर्लभम्॥ ८९

इन सभी गणोंके द्वारा मेरे बहुत-से लिङ्ग स्थापित किये गये हैं॥ ७५-७६॥

हे देवेशि! स्कन्देश्वरके उत्तरमें बलभद्रजीके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है; उसके दर्शनसे मनुष्य अनन्त फल प्राप्त करता है। स्कन्देश्वरके दक्षिणमें महालिङ्ग विराजमान है; पूर्वकालमें नन्दीने पश्चिमकी ओर मुखवाले उस लिङ्गको स्थापित किया था। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य नन्दीका लोक प्राप्त करता है॥ ७७-७८½॥

नन्दीश्वरके पश्चिममें पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! स्वर्लीनसदृश शिलाक्षेश्वर नामक वह लिङ्ग नन्दीके पिताके द्वारा स्थापित किया गया है, जो देवसमुदायके द्वारा पूजित है॥ ७९-८०॥

वहाँपर हिरण्याक्षदैत्यने मेरी भक्तिसे हिरण्याक्षेश्वर नामक अन्य प्रसिद्ध तथा सर्वव्यापी लिङ्गकी भी स्थापना की है। फलकी आकांक्षावाले अन्य देवताओंके द्वारा हिरण्याक्षेश्वरके समीपमें भक्तिपूर्वक हजारों लिङ्ग स्थापित किये गये हैं॥ ८१-८२॥

हे वरारोहे! उस स्थानपर हिरण्याक्षके दक्षिणमें देवदेव [शिव]-का अन्य पश्चिममुखवाला लिङ्ग भी बताया गया है॥ ८३॥

उनके पश्चिम दिशाभागमें अट्टहास नामक शुभ लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह मुखलिङ्ग पश्चिमकी ओर मुख किये हुए विराजमान है, हे प्रसन्न मुखवाली देवि! वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है; हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ईशानलोक प्राप्त करता है॥ ८४-८५॥

हे यशस्विनि! अट्टहासके समीप पश्चिममें पूर्वद्वारपर मित्रावरुण नामक दो लिङ्ग स्थित हैं; उन दोनोंके दर्शनसे मित्रावरुणलोक प्राप्त होता है। वहींपर वसिष्ठेश नामक अन्य प्रसिद्ध लिङ्ग भी विराजमान है॥ ८६-८७॥

पूर्वकालमें [महर्षि] याज्ञवल्क्यने भी लिङ्गको स्थापित किया था; चार मुखोंवाला वह लिङ्ग सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ८८॥

वहींपर समीपमें मैत्रेयीके द्वारा स्थापित अन्य शुभ लिङ्ग विद्यमान है; उसके दर्शनसे मनुष्य अति दुर्लभ परम ज्ञान प्राप्त करता है॥ ८९॥

याज्ञवल्क्येश्वरस्यापि पश्चिमे पश्चिमाननम्।
प्रह्लादेश्वरनामानमद्वैतफलदायकम् ।
प्रह्लादेश्वरात् पुरतः स्वयंलीनं तु तिष्ठति॥ ९०

स्वर्लीनेश्वरनामानं सुमहाफलदायकम्।
ज्ञानविज्ञाननिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्॥ ९१

या गतिर्विहिता तेषां स्वर्लीने तु मृतस्य च।
स्वर्लीनात् पुरतो लिङ्गं स्थितं पूर्वमुखं शुभम्॥ ९२

वैरोचनेश्वरं नाम स्थापितं दैत्यसूनुना।
तस्य चैवोत्तरे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्मृतम्॥ ९३

बलिना स्थापितं तत्तु शिवालोकपरायणम्।
अन्यच्चैतत् स्थिरं लिङ्गं बाणेश्वर इति स्थितम्॥ ९४

राक्षसी तु महाभीमा नाम्ना शालकटङ्कटा।
तया च स्थापितं भद्रे तस्य चोत्तरतः शुभम्॥ ९५

अन्यदायतनं पुण्यं तस्मिन् स्थाने यशस्विनि।
हिरण्यगर्भं विख्यातं पुण्यं तस्यापि दर्शनम्॥ ९६

मोक्षेश्वरं तु तत्रैव स्वर्गेश्वरमतः परम्।
एतौ दृष्ट्वा सुरेशानि स्वर्गं मोक्षं च विन्दति॥ ९७

वासुकीश्वरनामानं तयोश्चोत्तरतः शुभम्।
चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम्॥ ९८

तस्यैव पूर्वखण्डे तु वासुकेस्तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नातो वरारोहे रोगैर्नैवाभिभूयते॥ ९९

तस्यैव च समीपे तु चन्द्रेण स्थापितं शुभम्।
चन्द्रेश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं विद्येश्वरं शुभम्॥ १००

लभेद्वैद्याधरं लोकं तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ १०१

याज्ञवल्क्येश्वरके भी पश्चिम भागमें पश्चिमकी ओर मुखवाला प्रह्लादेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है; यह अद्वैत फल देनेवाला है। प्रह्लादेश्वरके सामने स्वयंलीन स्वर्लीनेश्वर नामक लिङ्ग विराजमान है; यह अत्यधिक फल प्रदान करनेवाला है। ज्ञान-विज्ञानमें निष्ठ तथा परम आनन्दकी अभिलाषा करनेवालोंकी जो गति होती है, वह गति स्वर्लीन [तीर्थ]-में मरनेवालेकी होती है॥ ९०-९१^१/_२ ॥

स्वर्लीनके आगे पूर्वकी ओर मुखवाला वैरोचनेश्वर नामक शुभ लिङ्ग स्थित है; यह दैत्य-पुत्रद्वारा स्थापित किया गया है॥ ९२ 1/2 ॥

हे देवि! उसके उत्तरमें भी पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग बताया गया है; शिवालोक प्रदान करनेवाला वह [लिङ्ग] बलिके द्वारा स्थापित किया गया है। वहाँ बाणेश्वर नामक अन्य स्थिर लिङ्ग भी विराजमान है॥ ९३-९४॥

हे भद्रे! शालकटंकटा नामक [एक] महाभयंकर राक्षसी थी, उसके द्वारा उस [बाणेश्वर]-के उत्तरमें शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ९५॥

हे यशस्विनि! हिरण्यगर्भ नामसे प्रसिद्ध अन्य पुण्यप्रद आयतन [लिङ्ग] भी उस स्थानपर विद्यमान है; उसका भी दर्शन पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ ९६॥

हे सुरेशानि! इसके बाद वहींपर मोक्षेश्वर तथा स्वर्गेश्वर विद्यमान हैं; इनका दर्शन करके स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ ९७॥

उन दोनोंके उत्तरमें वासुकीश्वर नामक चार मुखवाला शुभ लिङ्ग स्थित है; वह लिङ्ग समस्त कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ९८॥

उसीके पूर्वभागमें वासुकिका उत्तम तीर्थ विद्यमान है; हे वरारोहे! उसमें स्नान करके मनुष्य रोगोंसे आक्रान्त नहीं होता है॥ ९९॥

उसीके समीपमें चन्द्रमाके द्वारा शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। चन्द्रेश्वरके पूर्वमें विद्येश्वर नामक शुभ लिङ्ग विद्यमान है; उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य विद्याधरका लोक प्राप्त करता है॥ १००-१०१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे अविमुक्तक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'अविमुक्तक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन' नामक प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

मातृमण्डल और आकाशलिङ्गका वर्णन

देव्युवाच

कथं वीरेश्वरो देव एतदिच्छामि वेदितुम्।
कथयस्व प्रसादेन देवदेव महेश्वर॥ १

ईश्वर उवाच

इह आसीत्पुरा राजा नियुक्तिर्नाम विश्रुतः।
तस्य भार्या महादेवि अरजा नाम विश्रुता॥ २

एकः पुत्रस्तया जातः कालेन बहुना तदा।
पादे द्वितीये सम्भूते मूलनक्षत्रसंज्ञके॥ ३

मन्त्रिभिश्च तदा देवि उक्ता तत्रेशभामिनी।
जातोऽयं दारको देवि पापनक्षत्रसम्भवः॥ ४

तस्मात्त्याज्यस्तु बालोऽयं राज्ञा चैव हितार्थिना।
एवमुक्ता तु सा देवि मन्त्रिभिर्हितकाम्यया॥ ५

ध्यात्वा चाधोमुखी दीना प्रतिपेदे महेश्वरीम्।
प्रोवाचेदं तदा धात्रीं बालं गृह्णीष्व मा चिरम्॥ ६

स्वर्लीनस्योत्तरे पार्श्वे मातृभ्यश्च समर्पितम्।
रक्षतामिति बालोऽयं मम पुत्र इत्यब्रवीत्॥ ७

राज्ञ्यास्तु वचनं सर्वं कृतं धातृकया तदा।
मातॄणां हि तदा बालं निक्षेप्तुमुपचक्रमे॥ ८

कदाचित्कालपर्याये मातृभिः परिचिन्तितम्।
अस्माकं पुत्रतां प्राप्त एष बालो न संशयः॥ ९

अस्माभिर्गन्तुमारब्धं खेचरीचक्रमुत्तमम्।
ब्रह्माणी चाब्रवीद्देवि योगपीठं तु नीयताम्॥ १०

योगपीठेन दृष्टेन बालो राज्यक्षमो भवेत्।
सर्वाभिर्मातृभिश्चाथ तद्वाक्यमभिनन्दितम्॥ ११

नीतो विद्याधरं लोकं योगपीठं च दर्शितम्।
आश्वासितो मातृगणैः स्पृष्टः तत्र स बालकः॥ १२

कथ्यतां पूर्ववृत्तान्तः पुत्र बालकुमारक।
कस्य त्वं पूर्णचन्द्राभ कथं प्राप्तोऽसि नो गृहम्।
एवमुक्तस्तदा बालो न किञ्चित्प्रत्यभाषत॥ १३

देवी बोलीं—हे देव! वीरेश्वर कैसे उत्पन्न हुए, मैं यह जानना चाहती हूँ; हे देवदेव! हे महेश्वर! आप कृपापूर्वक यह बतायें॥ १॥

ईश्वर बोले—हे महादेवि! इस लोकमें पूर्वकालमें नियुक्ति नामसे प्रसिद्ध [एक] राजा था, उसकी भार्या अरजा नामसे विख्यात थी॥ २॥

बहुत समयके बाद उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मूल नक्षत्रके दूसरे चरणमें उसके उत्पन्न होनेपर मन्त्रियोंने राजाकी पत्नीसे कहा—हे देवि! यह बालक पापनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है, अतः [अपने] कल्याणकी इच्छावाले राजाको इस बालकका त्याग कर देना चाहिये॥ ३-४१/२॥

हे देवि! हितकी कामनासे मन्त्रियोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर दुःखी होकर नीचेकी ओर मुख की हुई उस रानीने ध्यान करके महेश्वरीकी शरण ली॥ ५१/२॥

तब उसने धात्रीसे यह कहा—तुम बालकको शीघ्र ग्रहण करो और स्वर्लीनके उत्तरभागमें इसे मातृकाओंको समर्पित कर दो तथा [उनसे] कहो कि मेरे इस पुत्रकी रक्षा कीजिये॥ ६-७॥

तदनन्तर धात्रीने रानीके समस्त वचनका पालन किया और उस बालकको मातृकाओंके पास रखनेका उपक्रम किया॥ ८॥

तब किसी समय कालपर्यायसे मातृकाओंने सोचा कि यह बालक हमलोगोंके पुत्रत्वको प्राप्त हो चुका है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ९॥

अब हमलोग उत्तम खेचरीचक्रको जाना आरम्भ करें। इसके बाद हे देवि! ब्रह्माणीने कहा कि इसे योगपीठ ले जाओ, योगपीठके दर्शनसे [यह] बालक राज्य प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। तत्पश्चात् सभी मातृकाओंने उस बातका समर्थन किया॥ १०-११॥

वे उसे विद्याधरलोक ले गयीं और उसे योगपीठका दर्शन कराया। इसके बाद मातृगणोंने उसे आश्वस्त किया और उस बालकसे पूछा—हे पुत्र! हे बालकुमार! अपना पूर्ववृत्तान्त बताओ॥ १२१/२॥

हे पूर्णचन्द्रके समान आभावाले! तुम किसके पुत्र हो और हमलोगोंके घर कैसे आये? तब उनके ऐसा कहनेपर उस बालकने कुछ नहीं कहा॥ १३॥

पञ्चमुद्रोवाच

तथा राज्यक्षमो बालस्तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
एवं श्रुत्वा तु तत्सर्वा मातरोऽभिमुखाभवन्॥ १४

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा तुष्टो वै खेचरीगणः।
गच्छ पुत्र स्वयं राज्यं पालयस्व यथासुखम्॥ १५

बालेन प्रार्थिताः सर्वाः प्रजाकामेन सुन्दरि।

यदाहं भविता चोर्व्यां सर्वलोकेषु पार्थिवः॥ १६
अवतारस्तदा कार्यो मद्भक्त्या परया तदा।
एवं वै प्रार्थिताः सर्वा मातरो लोकमातरः॥ १७

अवतेरुर्यथायोगं कृष्णपक्षे चतुर्दशीम्।
पञ्चमुद्रा तु बालं तमनयन्नगरं पुनः॥ १८

आगत्य च यथायोगमर्धरात्रे व्यवस्थितम्।
अवतेरुस्तदा हृष्टाः पञ्चमुद्रा विमातरः॥ १९

बालेन पूजिताः सर्वाः प्रतिष्ठाप्य यथाविधि।
पूजां गृहीत्वा बालस्य आकाशं तु पुनर्गताः॥ २०

अद्यापि दृश्यते व्योम्नि मातृणां गणमण्डलम्।
निरीक्ष्यते पुण्यकर्मा उत्तराभिमुखं स्थितम्॥ २१

यदेतद्दृश्यते व्योम्नि मातृणां तु समीपतः।
आकाशलिङ्गमित्युक्तमयं स्वर्लीन उच्यते॥ २२

यथाकाशे तथा भूमौ एवं सर्वत्र दृश्यते।
एवमालोक्य तं सर्वं गगने मातृमण्डलम्॥ २३

मातृणां तु प्रभावेण नरो भवति सिद्धिभाक्।
ततः प्रभृति देवेशि अस्मिन् क्षेत्रे व्यवस्थिता॥ २४

विपद्भियागता यस्माद्विकटा प्रोच्यते बुधैः।
बालो वीरत्वमापन्नो मत्प्रसादाद्यशस्विनि॥ २५

बालेन चाप्यहं देवि अस्मिन् देशे सुखोषितः॥ २६

पंचमुद्रा बोली—यह बालक जिस भी तरह राज्य करनेमें समर्थ हो, वैसा तुम करो। यह सुनकर वे सभी माताएँ अभिमुख हुईं और बोलीं—'ऐसा ही होगा'—यह कहकर खेचरीसमुदाय प्रसन्न हो गया॥ १४$^{1}/_{2}$ ॥

उन्होंने कहा—'हे पुत्र! अब जाओ और सुखपूर्वक अपने राज्यका पालन करो'॥ १५॥

हे सुन्दरि! तब प्रजाकी कामनावाले बालकने सभी माताओंसे प्रार्थना की कि जब मैं पृथ्वीपर सभी लोकोंका राजा बनूँ, तब मेरी परम भक्तिसे आपलोग अवतार ग्रहण करें॥ १६$^{1}/_{2}$ ॥

इस प्रकार [उसके द्वारा] प्रार्थित सभी लोकमातृस्वरूपा मातृकाओंने समयानुसार कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथिको अवतार लिया। पंचमुद्रा उस बालकको पुनः नगरमें ले गयीं॥ १७-१८॥

वहाँ आ करके वे यथायोग अर्धरात्रिमें व्यवस्थित हो गयीं। तब पंचमुद्रा तथा विमाताओंने प्रसन्न होकर अवतार लिया॥ १९॥

इसके बाद उस बालकने विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करके सभी माताओंकी पूजा की और बालककी पूजा ग्रहण करके वे पुनः आकाशमें चली गयीं॥ २०॥

मातृगणोंका समूहमण्डल आज भी आकाशमें देखा जाता है। पुण्यकर्मवाला व्यक्ति उत्तराभिमुखस्थित उस मण्डलको देख सकता है॥ २१॥

मातृकाओंके समीप आकाशमें जो यह देखा जाता है, उसे आकाशलिङ्ग कहा गया है; इसीको स्वर्लीन कहा जाता है॥ २२॥

जैसे यह आकाशमें वैसे ही पृथ्वीपर दिखायी पड़ता है; इस प्रकार यह सर्वत्र दिखायी देता है। इस तरह उस सम्पूर्ण मातृमण्डलको आकाशमें देखकर मनुष्य मातृगणोंके प्रभावसे सिद्धिका भागी हो जाता है॥ २३$^{1}/_{2}$ ॥

हे देवेशि! उसी समयसे वे देवी इस क्षेत्रमें विराजमान हो गयीं; वे विपत्तिके भयसे आयीं, अतः विद्वान् लोग उन्हें विकटा कहते हैं। हे यशस्विनि! वह बालक मेरी कृपासे वीरत्वसे युक्त हो गया और मैं भी बालकके साथ इस स्थानपर सुखपूर्वक रहने लगा॥ २४—२६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

सगरेश्वर, भद्रेश्वर, शूलेश्वर, नारदेश्वर, वरणेश्वर तथा कोटीश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

वायव्ये तु दिशाभागे तस्य पीठस्य सुन्दरि।
सगरेण पुरा देवि तस्मिन् देशे प्रतिष्ठितम्॥ १

चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम्।
तस्यैवोत्तरपूर्वेण नाम्ना वालीश्वरं शुभम्॥ २

वालिना स्थापितं लिङ्गं कपिना सुमहात्मना।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि तिर्यग्योनिं न गच्छति॥ ३

तस्य चोत्तरदिग्भागे सुग्रीवस्य महात्मनः।
लिङ्गं तस्य शुभं भद्रे सर्वकिल्विषनाशनम्॥ ४

तथा हनुमतात्रैव स्थापितं लिङ्गमुत्तमम्।
सगरात्पश्चिमेनैव लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठितम्॥ ५

मम भक्त्या च सुश्रोणि अश्विभ्यां परमेश्वरि।
तस्यैवोत्तरपार्श्वे तु भद्रदोहमिति स्मृतम्॥ ६

गवां क्षीरेण सञ्जातं सर्वपातकनाशनम्।
कपिलानां सहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
तत्फलं लभते मर्त्यः स्नातस्तत्र न संशयः॥ ७

पूर्वभाद्रपदायुक्ता पौर्णमासी यदा भवेत्।
तदा पुण्यतमः कालो ह्यश्वमेधफलप्रदः॥ ८

ह्रदस्य पश्चिमे तीरे भद्रेश्वरमिति स्थितम्।
तं दृष्ट्वा मानवो भद्रे गोलोकं लभते ध्रुवम्॥ ९

भद्रेश्वरस्य दिग्भागे नैर्ऋते तु यशस्विनि।
उपशान्तशिवं नाम ख्यातं सर्वसुरासुरैः॥ १०

उपशान्तस्य देवस्य उत्तरे वरवर्णिनि।
चक्रेश्वरमिति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ११

पश्चिमाभिमुखं देवि ह्रदस्तस्यैव चाग्रतः।
तस्मिन् ह्रदे नरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम्॥ १२

शिवलोकमवाप्नोति भावितेनान्तरात्मना।
तस्य पश्चिमदिग्भागे शूलेश्वरमिति स्थितम्॥ १३

ईश्वर बोले—हे सुन्दरि! हे देवि! उस पीठके वायव्य (पश्चिम-उत्तर) दिशाभागमें उस स्थानपर पूर्वकालमें सगरके द्वारा चार मुखवाला लिङ्ग स्थापित किया गया है; वह लिङ्ग समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ १$^{1}/_{2}$॥

उसीके उत्तर-पूर्वमें परम महात्मा कपि वालिके द्वारा वालीश्वर नामक शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य तिर्यक् (पशु-पक्षी)-योनि नहीं प्राप्त करता है॥ २-३॥

उसके उत्तर दिशाभागमें महात्मा सुग्रीवके द्वारा शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है; हे भद्रे! वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है और यहींपर हनुमान्‌जीने भी उत्तम लिङ्गकी स्थापना की है॥ ४$^{1}/_{2}$॥

हे सुश्रोणि! हे परमेश्वरि! वहींपर सगरेश्वरके पश्चिममें दोनों अश्विनीकुमारोंने भक्तिपूर्वक मेरे लिङ्गकी स्थापना की है॥ ५$^{1}/_{2}$॥

उसीके उत्तरभागमें भद्रदोह [लिङ्ग] बताया गया है; गायोंके दुग्धसे निर्मित वह लिङ्ग सभी पापोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान किया हुआ मनुष्य हजार कपिला गायोंके दानका जो फल होता है, उस फलको प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६-७॥

पूर्वभाद्रपदसे युक्त पूर्णिमा जब हो, उस समयका पुण्यतम काल अश्वमेधयज्ञका फल देनेवाला होता है॥ ८॥

[उस] ह्रद (सरोवर)-के पश्चिम तटपर भद्रेश्वर [लिङ्ग] स्थित है; हे भद्रे! उसका दर्शन करके मनुष्य निश्चित रूपसे गोलोक प्राप्त करता है॥ ९॥

हे यशस्विनि! भद्रेश्वरके नैर्ऋत्य दिशाभागमें उपशान्तशिव नामक लिङ्ग बताया गया है। हे वरवर्णिनि! उपशान्तदेवके उत्तरमें सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत पश्चिमकी ओर मुखवाला चक्रेश्वरलिङ्ग कहा गया है। हे देवि! उसीके आगे [एक] सरोवर है; उस सरोवरमें स्नान करके तथा भक्तियुक्त मनसे महेश्वरकी पूजा करके मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है॥ १०—१२$^{1}/_{2}$॥

उसके पश्चिम दिशाभागमें शूलेश्वरलिङ्ग विराजमान

शूलयन्त्रं पुरा न्यस्तं स्नानार्थं वरवर्णिनि।
ह्रदस्तत्र समुत्पन्नो देवदेवस्य चाग्रतः॥ १४
स्नानं कृत्वा ह्रदे तस्मिन् दृष्ट्वा शूलेश्वरं प्रभुम्।
रुद्रलोकमवाप्नोति त्यक्त्वा संसारसागरम्॥ १५
शूलेश्वरस्य पूर्वेण अन्यदायतनं शुभम्।
तप्तं तत्र तपस्तीव्रं नारदेन सुरर्षिणा॥ १६
स्थापितं मम लिङ्गं तु कुण्डस्य पुरतः शुभम्।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै नारदेश्वरम्॥ १७
संसारमाया या घोरा तां तरेन्नात्र संशयः।
नारदेशस्य पूर्वेण नाम्ना धर्मेश्वरं शुभम्॥ १८
स्थापितं मम लिङ्गं तु कुण्डस्य पुरतः शुभे।
वायव्ये तु दिशाभागे तस्य देवस्य सुन्दरि॥ १९
विनायकमिति ख्यातं कुण्डं तत्र शुभोदकम्।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैव विनायकम्॥ २०
सर्वविघ्नविनिर्मुक्तो ह्यस्मिन् क्षेत्रे वसेच्चिरम्।
विनायकस्य संलग्न उत्तरेण यशस्विनि॥ २१
ह्रदस्तत्र सुविख्यातोऽमरको नाम नामतः।
दक्षिणेन तु कुण्डस्य मुखलिङ्गं तु तिष्ठति॥ २२
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चामरकेश्वरम्।
अज्ञानाच्चैव यत्किञ्चिदिह क्षेत्रे तु यत्कृतम्॥ २३
विलयं याति तत्सर्वं दृष्ट्वा तल्लिङ्गमुत्तमम्।
तस्य चोत्तरदिग्भागे नातिदूरे यशस्विनि॥ २४
वरणायास्तटे शुद्धे लिङ्गं तत्रैव संस्थितम्।
वरणेश्वरं तु विख्यातं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ २५
तस्मिन् पाशुपतः सिद्ध अश्वपादो यशस्विनि।
अनेनैव शरीरेण शाश्वतीं सिद्धिमागतः॥ २६
ममापि तत्र सान्निध्यं तस्मिँल्लिङ्गे यशस्विनि।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि गन्धर्वत्वं च विन्दति॥ २७
तस्य पश्चिमदिग्भागे नाम्ना शैलेश्वरं शुभम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि पूर्वोक्तं लभते फलम्॥ २८

है; पूर्वकालमें वहाँ शूलयन्त्र स्थापित किया गया है। हे वरवर्णिनि! वहाँ देवदेवके समक्ष स्नानके लिये ह्रद उत्पन्न हुआ है; उस ह्रदमें स्नान करके तथा भगवान् शूलेश्वरका दर्शनकर मनुष्य संसार-सागरका त्याग करके रुद्रलोक प्राप्त करता है॥ १३—१५॥

शूलेश्वरके पूर्वमें दूसरा शुभ आयतन (तीर्थ) स्थित है, देवर्षि नारदने वहाँ घोर तपस्या की थी। कुण्डके सामने मेरा [एक] शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। उस कुण्डमें स्नान करके नारदेश्वरका दर्शन करके मनुष्य जो घोर संसारमाया है, उसे पार कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६-१७½॥

हे शुभे! नारदेश्वरके पूर्वमें तथा कुण्डके सामने ही धर्मेश्वर नामक मेरा शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। हे सुन्दरि! उन देवके वायव्य (पश्चिम-उत्तर) दिशाभागमें विनायक बताये गये हैं, वहाँपर पवित्र जलवाला एक कुण्ड है। उस कुण्डमें स्नान करके तथा विनायकका दर्शनकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर इस क्षेत्रमें चिरकालतक वास करता है॥ १८—२०½॥

हे यशस्विनि! विनायकके समीपमें उत्तर दिशामें वहाँपर अति प्रसिद्ध ह्रद है और उस कुण्डके दक्षिणमें अमरक नामसे विख्यात मुखलिङ्ग स्थित है; उस कुण्डमें स्नान करके और उस उत्तम अमरकेश्वरलिङ्गका दर्शन करके [मनुष्यके द्वारा] इस क्षेत्रमें अज्ञानपूर्वक जो भी [पाप] किया गया रहता है, वह सब नष्ट हो जाता है॥ २१-२३½॥

हे यशस्विनि! उसके उत्तर दिशामें वहींपर समीपमें ही वरणाके पवित्र तटपर एक लिङ्ग स्थित है; वरणेश्वर नामसे विख्यात वह लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है॥ २४-२५॥

हे यशस्विनि! अश्वपाद नामक सिद्ध पाशुपत उसमें इसी शरीरसे शाश्वत सिद्धिको प्राप्त हुए हैं॥ २६॥

हे यशस्विनि! वहाँ उस लिङ्गमें [सदा] मेरा भी सान्निध्य रहता है; हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे गन्धर्वत्वकी प्राप्ति होती है॥ २७॥

हे देवि! उसके पश्चिम दिशाभागमें शैलेश्वर नामक शुभ लिङ्ग है; उसका दर्शन करके मनुष्य पूर्वोक्त [समस्त] फल प्राप्त करता है॥ २८॥

दक्षिणे चापि तस्यैव कोटीश्वरमिति स्थितम्।
यत्र सा दृश्यते देवि विश्रुता भीष्मचण्डिका॥ २९

हे देवि! उसीके दक्षिणमें कोटीश्वर [नामक] लिङ्ग भी स्थित है, जहाँ वे प्रसिद्ध भीष्मचण्डिका दिखायी देती हैं॥ २९॥

बीभत्सविकृते भीमे श्मशाने वसते सदा।
तेन सा प्रोच्यते देवि विश्रुता भीष्मचण्डिका॥ ३०

हे देवि! वे सदा बीभत्स रूपवाले भयानक श्मशानमें वास करती हैं, इसलिये वे प्रसिद्ध भीष्मचण्डिका कही जाती हैं॥ ३०॥

कोटितीर्थेषु यः स्नात्वा कोटीश्वरमथार्चयेत्।
गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः॥ ३१

तत्फलं सकलं तस्य स्नानेनैकेन सुन्दरि।

कोटितीर्थोंमें स्नान करके कोटीश्वरका पूजन करना चाहिये। हे सुन्दरि! मनुष्य करोड़ों गायोंके दानसे जो फल प्राप्त करता है, वह सम्पूर्ण फल उसे यहाँपर मात्र एक बार स्नान करनेसे प्राप्त हो जाता है॥ ३१ १/२॥

कोटीश्वरस्य पूर्वेण ऋषिसङ्घैः प्रतिष्ठितम्॥ ३२
तेन लिङ्गेन दृष्टेन दृष्टं स्यात् सचराचरम्॥ ३३

कोटीश्वरके पूर्वमें ऋषियोंके द्वारा एक लिङ्ग स्थापित किया गया है; उस लिङ्गके दर्शनसे चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगत हो जाता है॥ ३२-३३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

कपालमोचन, ऋणमोचन एवं कपिलेश्वर आदि तीर्थोंका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

कोटीश्वरस्य देवस्य आग्नेय्यां दिशि संस्थितः।
श्मशानस्तम्भसंज्ञेति विख्यातः सुप्रतिष्ठितः॥ १

मानवास्तत्र पात्यन्ते इह यैर्दुष्कृतं कृतम्।

ईश्वर बोले—देवकोटीश्वरके आग्नेय दिशामें प्रसिद्ध तथा सुप्रतिष्ठित श्मशानस्तम्भ स्थित है। वहाँपर वे मनुष्य गिराये जाते हैं, जिन्होंने इस लोकमें बुरा कर्म किया है॥ १ १/२॥

यत्र स्तम्भे सदा देवि अहं तिष्ठामि भामिनि॥ २
तत्र गत्वा तु यः पूजां मम देवि करिष्यति।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेच्च परमां गतिम्॥ ३

हे भामिनि! हे देवि! मैं उस स्तम्भमें सदा विराजमान हूँ। हे देवि! वहाँ जाकर जो मेरी पूजा करेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जायगा और परम गति प्राप्त करेगा॥ २-३॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि महातीर्थं यशस्विनि।
कपालमोचनं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ४

हे यशस्विनि! अब मैं तुम्हें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कपालमोचन नामक महातीर्थके विषयमें बताऊँगा॥ ४॥

कपालं पतितं तत्र स्नातस्य मम सुन्दरि।
तस्मिन् स्नातो वरारोहे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ५

हे सुन्दरि! वहाँ स्नान करते हुए मेरा कपाल गिर पड़ा था; हे वरारोहे! उसमें स्नान करनेवाला ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है॥ ५॥

कपालेश्वरनामानं तस्मिंस्तीर्थे व्यवस्थितम्।
अश्वमेधमवाप्नोति दर्शनात्तस्य सुन्दरि॥ ६

उस तीर्थमें कपालेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है; हे सुन्दरि! उसके दर्शनसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ६॥

तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा वरारोहे ऋणैर्मुक्तो भवेन्नरः॥ ७

उसीके उत्तरमें पासमें ही त्रैलोक्यप्रसिद्ध एक तीर्थ है, हे वरारोहे! उसमें स्नान करके मनुष्य [सभी] ऋणोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

ऋणमोचनकं नाम्ना विख्यातं भुवि सुन्दरि।
त्रीणि लिङ्गानि तिष्ठन्ति तत्रैव मम सुन्दरि॥ ८
तानि दृष्ट्वा तु सुश्रोणि नश्यति त्रिविधम् ऋणम्।
दक्षिणे तु दिशाभागे तस्य तीर्थस्य सुन्दरि॥ ९
अङ्गारेश्वरनामानं मुखलिङ्गं व्यवस्थितम्।
पश्चिमाभिमुखं देवि कुण्डस्य पुरतः स्थितम्॥ १०
अङ्गारेण यदा योगश्चतुर्थ्यामष्टमीषु वा।
तीर्थे तस्मिन्नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मङ्गलेश्वरम्॥ ११
व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तो यत्र तत्राभिजायते।
तस्यैव च समीपस्थमुत्तरेण यशस्विनि॥ १२
लिङ्गं तु सुमहत् पुण्यं विश्वकर्मप्रतिष्ठितम्।
पश्चिमाभिमुखं दृष्ट्वा सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात्॥ १३
बुधेश्वरं तु तत्रैव दृष्ट्वा भक्त्या दृढव्रतः।
सर्वान् कामानवाप्नोति दृष्ट्वा देवं बुधेश्वरम्॥ १४
बुधेश्वराद्दक्षिणतो लिङ्गं चैव चतुर्मुखम्।
महामुण्डेश्वरं नाम सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ १५
तस्य देवस्य पुरतः कूपस्तिष्ठति वै शुभः।
तस्य कूपस्य सा देवी उपरिष्टात् स्थिता शुभा॥ १६
स्नानार्थं तत्र सा क्षिप्ता माला मुण्डमयी मया।
तेन सम्प्रोच्यते देवि महामुण्डेति मानवैः॥ १७
खट्वाङ्गं तत्र वै क्षिप्तं स्नानार्थं वरवर्णिनि।
खट्वाङ्गेश्वर नाम्ना तु स्थितं तत्रैव सुव्रते॥ १८
भुवनेश्वरनाम्ना तु लिङ्गं देवि फलप्रदम्।
उत्तराभिमुखं लिङ्गं कुण्डाद्वै दक्षिणे तटे॥ १९
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै भुवनेश्वरम्।
न दुर्गतिमवाप्नोति कल्मषैश्च विमुच्यते॥ २०
दक्षिणे भुवनेशस्य कुण्डमन्यच्च तिष्ठति।
नाम्ना विमलमीशं च लिङ्गं तस्यैव पूर्वतः॥ २१
वैमल्यं तु नरा यान्ति तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्।
तत्र स्नात्वा वरारोहे मोदते दिवि दैवतैः॥ २२

हे सुन्दरि! वह [तीर्थ] ऋणमोचन नामसे पृथ्वीलोकमें विख्यात है। हे सुन्दरि! वहींपर मेरे तीन लिङ्ग स्थित हैं; हे सुश्रोणि! उनका दर्शन करनेसे तीनों प्रकारके ऋण विनष्ट हो जाते हैं॥ ८½॥

हे सुन्दरि! उस तीर्थके दक्षिण दिशाभागमें अंगारेश्वर नामक मुखलिङ्ग विराजमान है। हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग कुण्डके सामने स्थित है॥ ९-१०॥

जब अंगार [मंगल]-के साथ चतुर्थी अथवा अष्टमीका योग हो, तब उस तीर्थमें स्नान करके तथा मंगलेश्वरका दर्शन करके मनुष्य जहाँ-कहीं भी रहे, व्याधियोंसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है॥ ११½॥

हे यशस्विनि! इसीके समीप उत्तर दिशामें विश्वकर्माके द्वारा स्थापित महापुण्यप्रद पश्चिमाभिमुख लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य सर्वज्ञत्व प्राप्त कर लेता है॥ १२-१३॥

वहींपर देव बुधेश्वरका भक्तिपूर्वक दर्शन करके दृढ व्रतवाला भक्त सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ १४॥

बुधेश्वरके दक्षिणमें सभी सिद्धियोंको देनेवाला महामुण्डेश्वर नामक चतुर्मुखलिङ्ग है॥ १५॥

उन देवके समक्ष [एक] शुभ कूप विद्यमान है, उस कूपके ऊपर वे कल्याणमयी देवी विराजमान हैं। स्नानके लिये वहाँ मेरे द्वारा वह मुण्डमयी माला प्रक्षिप्त की गयी है, अतः हे देवि! मनुष्य उन्हें महामुण्डा कहते हैं॥ १६-१७॥

हे वरवर्णिनि! स्नानहेतु वहींपर खट्वांग भी प्रक्षिप्त किया गया है; हे सुव्रते! वहींपर खट्वांगेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है॥ १८॥

हे देवि! वहाँ कुण्डके दक्षिण तटपर भुवनेश्वर नामक फलदायक लिङ्ग विराजमान है; वह लिङ्ग उत्तरकी ओर मुखवाला है। उस कुण्डमें स्नान करके तथा भुवनेश्वरका दर्शन करके मनुष्य दुर्गति नहीं प्राप्त करता है और पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १९-२०॥

भुवनेश्वरके दक्षिणमें एक अन्य कुण्ड भी स्थित है, उसीके पूर्वमें विमलीश नामक लिङ्ग है॥ २१॥

उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। हे वरारोहे! वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्दित रहता है॥ २२॥

तस्मिन् पाशुपतः सिद्धस्त्र्यम्बको नाम वै मुनिः।
अनेनैव शरीरेण रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ २३
तस्याङ्गारककुण्डस्य पश्चिमेन यशस्विनि।
महदायतनं पुण्यं भृगुणा स्थापितं पुरा॥ २४
यस्तदायतनं दृष्ट्वा अर्चितं स्तुतिपूर्वकम्।
शिवलोकाच्च ते पुण्यान्न च्यवन्ति कदाचन॥ २५
दक्षिणेन तु तस्यैव अन्यदायतनं शुभम्।
नन्दीशेश्वरनामानं देवानामपि दुर्लभम्॥ २६
तस्य दर्शनमात्रेण व्रतं पाशुपतं लभेत्।
तत्र सिद्धो महात्मा वै कपिलर्षिर्महातपाः॥ २७
त्रिकालमर्चयद्देवं गुहाशायी यतात्मवान्।
एवं वर्षसहस्रेण तस्य तुष्टोऽस्म्यहं प्रिये॥ २८
मम देवि प्रसादेन साङ्ख्यवेत्ता महायशाः।
कपिलेश्वरस्याधस्ताद्गुहा तत्रैव संस्थिता।
तां गुहां वीक्षते यो वै न स पापेन लिप्यते॥ २९

देव्युवाच

कपिलेश्वरं कथं देवमोङ्कारेश्वरसंज्ञितम्।
कथयस्व प्रसादेन देवदेव महेश्वर॥ ३०

ईश्वर उवाच

त्रीणि लिङ्गानि गुह्यानि वाराणस्यां मम प्रिये।
येषां चैव तु सान्निध्यं मम चैव सुरेश्वरि॥ ३१
एवं चान्यप्रकारेण ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
क्रमान्मात्रा समुद्दिष्टा नन्दीशस्य तु सुन्दरि॥ ३२
अकारे च स्थितो विष्णुः पञ्चायतनसंस्थितः।
उकारो ब्रह्मणो रूपं तस्य दक्षिणतः प्रिये॥ ३३
नन्दीशेश्वरनामाहमुत्तरेण व्यवस्थितः।
तं च देवि तदोङ्कारं मम रूपं सुरेश्वरि॥ ३४
मानवानां हितार्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्।
मत्स्योदर्यास्तु कूलेऽहमुत्तरे चोत्तरे प्रिये॥ ३५
नन्दीशेश्वरनामाहमुत्तरेण व्यवस्थितः।
नन्दीशं परमं ब्रह्म नन्दीशं परमा गतिः॥ ३६
नन्दीशं परमं स्थानं दुःखसंसारमोचनम्।
अप्रकाश्यमिदं कान्ते तव स्नेहात् प्रकाशितम्॥ ३७
अन्यथा गोपनीयं तु मम भक्तिविवर्जिते।
युगे सप्तदशे देवि कृत्वा चैकां वसुन्धराम्॥ ३८

उस स्थानपर त्र्यम्बक नामक सिद्ध पाशुपतमुनिने इसी शरीरसे रुद्रलोक प्राप्त किया था॥ २३॥

हे यशस्विनि! उस अंगारककुण्डके पश्चिममें पूर्वकालमें महर्षि भृगुके द्वारा [एक] पुण्यप्रद विशाल आयतन (लिङ्ग) स्थापित किया गया है। उस लिङ्गका दर्शन करके जो लोग स्तुतिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं, वे पुण्यमय शिवलोकसे कभी च्युत नहीं होते हैं॥ २४-२५॥

उसीके दक्षिणमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ नन्दीशेश्वर नामक अन्य शुभ लिङ्ग स्थित है; उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पाशुपतव्रत प्राप्त करता है। वहाँपर सिद्ध, महात्मा तथा महातपस्वी ऋषि कपिलने गुहामें रहकर जितेन्द्रिय होकर शिवजीकी त्रिकाल पूजा की थी, हे प्रिये! इस प्रकार एक हजार वर्षके अनन्तर मैं उनपर प्रसन्न हो गया और हे देवि! मेरी कृपासे वे महायशस्वी सांख्यवेत्ता हो गये। वहींपर कपिलेश्वरके नीचे [वह] गुहा स्थित है; जो उस गुहाका दर्शन करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता है॥ २६—२९॥

देवी बोलीं—हे देवदेव! हे महेश्वर! देव कपिलेश्वर किस प्रकार ओंकारेश्वर नामवाले हुए? कृपापूर्वक इसे बताइये॥ ३०॥

ईश्वर बोले—हे प्रिये! हे सुरेश्वरि! वाराणसीमें मेरे तीन गुह्य लिङ्ग हैं, जिनमें मेरा सदा सान्निध्य रहता है॥ ३१॥

हे सुन्दरि! इस प्रकार क्रमसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वररूप तीन मात्राएँ नन्दीश्वरकी कही गयी हैं॥ ३२॥

पंचायतनमें विराजमान विष्णु अकारमें स्थित हैं और हे प्रिये! ब्रह्माका रूप उकार उनके दक्षिणमें है॥ ३३॥

मैं नन्दीशेश्वर नामसे उत्तरमें स्थित हूँ। हे देवि! हे सुरेश्वरि! वही ओंकार मेरा रूप है, मनुष्योंके कल्याणके लिये मैं उस स्थानपर विराजमान हूँ॥ ३४ १/२॥

हे प्रिये! मैं मत्स्योदरीके उत्तर तटपर उत्तर दिशामें नन्दीशेश्वर नामसे स्थित हूँ। नन्दीश परम ब्रह्म हैं, नन्दीश परम गति हैं, नन्दीश परम पद हैं और वे दुःखरूप सागरसे मुक्ति दिलानेवाले हैं॥ ३५-३६ १/२॥

हे कान्ते! यह रहस्य [सर्वथा] अप्रकाश्य है, मैंने तुम्हारे स्नेहके कारण इसे बताया है, मेरी भक्तिसे रहित व्यक्तिसे इसे गुप्त रखना चाहिये। हे देवि! सत्रहवें युगमें

संहारं तु तपः कृत्वा अस्मिन् देशे समागतः।
ओङ्कारमूर्तिमास्थाय त्रिभेदेन स्थितो ह्यहम्॥ ३९

सर्वेषामेव सिद्धानां तत् स्थानं परिकीर्तितम्।
तस्मिँल्लिङ्गं शिवः साक्षात् स्वयमेव व्यवस्थितः॥ ४०

पूर्वामुखं तु तं देवं सिद्धसङ्घैः प्रपूजितम्।
ओङ्कारेश्वरनामानं देवानामपि दुर्लभम्॥ ४१

वामदेवस्तु सावर्णिरघोरः कपिलस्तथा।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्ता योगे पाशुपते स्थिताः॥ ४२

अन्ये च ऋषयो देवा यक्षगन्धर्वगुह्यकाः।
युगे युगे गमिष्यन्ति तस्मिन् स्थाने स्थितः सदा॥ ४३

दिव्या हि सा परा मूर्तिः कपिलेश्वरसंज्ञिता।
कदाचिदस्य देवस्य दर्शने जाह्नवी प्रिये॥ ४४

मत्स्योदरीं समायाति तत्र स्नानं तु मोक्षदम्।
आराध्य कपिलेशं तु त्रैलोक्यपालनक्षमाः॥ ४५

भवन्ति पुरुषा देवि मम नित्यं च वल्लभाः।
ओङ्कारं तत्परं ब्रह्म सकलं निष्कलं स्थितम्॥ ४६

रुद्रलोकस्य तद्द्वारं रहस्यं परिकीर्तितम्।
कपिलेश्वरस्याधस्ताद्दक्षिणे वरवर्णिनि॥ ४७

मत्स्योदरीं समेष्यन्ति तीर्थानि सह सागरैः।
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च॥ ४८

पक्षे पक्षे समेष्यन्ति चतुर्दश्यष्टमीषु च।
मत्स्योदर्यां यदा गङ्गा पश्चिमे कपिलेश्वरे॥ ४९

समायाति महादेवि स च योगः सुदुर्लभः।
तस्मिन् स्नानं महाभागे अश्वमेधसहस्रदम्॥ ५०

तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं कपिलेशस्य कीर्तितम्।
न कस्यचिद्देयं च गोपनीयं प्रयत्नतः॥ ५१

तत्रैव अक्षरं ब्रह्म नादेयं परिकीर्तितम्॥ ५२

सम्पूर्ण पृथ्वीको एक करके (जलाप्लावित करके) तथा संहाररूप तप करके मैं इस स्थानपर आ गया और ओंकाररूप धारणकर तीन रूपोंमें स्थित हो गया हूँ॥ ३७—३९॥

वह सभी सिद्धोंका स्थान कहा गया है। उस लिङ्गमें स्वयं साक्षात् शिव विराजमान हैं॥ ४०॥

पूर्वकी ओर मुखवाला वह ओंकारेश्वर नामक लिङ्ग सिद्धोंके द्वारा पूजित है तथा देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ ४१॥

वहाँपर वामदेव, सावर्णि, अघोर तथा कपिल पाशुपतयोगमें स्थित होकर परम सिद्धिको प्राप्त हुए॥ ४२॥

अन्य ऋषि, देवता, यक्ष, गन्धर्व तथा गुह्यक युग-युगमें उस स्थानपर जायँगे, मैं सदा वहाँ स्थित रहूँगा। कपिलेश्वर नामक वह मूर्ति परम दिव्य है॥ ४३½॥

हे प्रिये! कभी-कभी इन प्रभुके दर्शनके लिये गंगा मत्स्योदरी स्थानपर आती हैं, वहाँ स्नान करना मोक्षदायक होता है॥ ४४½॥

हे देवि! कपिलेश्वरकी आराधना करके मनुष्य तीनों लोकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो जाते हैं और सदा मेरे प्रिय बने रहते हैं। वे ओंकारेश्वर परब्रह्म हैं और निष्कल होते हुए भी सकल (साकार)-रूपमें स्थित हैं॥ ४५-४६॥

वह लिङ्ग रुद्रलोकका रहस्यमय द्वार कहा गया है। हे वरवर्णिनि! कपिलेश्वरके नीचे दक्षिणमें मत्स्योदरीमें साठ हजार करोड़ तथा साठ सौ करोड़ तीर्थ सभी सागरोंके साथ प्रत्येक पक्षकी अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथिको आते हैं॥ ४७-४८½॥

हे महादेवि! जब कपिलेश्वरके पश्चिममें मत्स्योदरीमें गंगा आती हैं, तब वह योग परम दुर्लभ होता है, हे महाभागे! उसमें [किया गया] स्नान हजार अश्वमेधयज्ञका फल देनेवाला होता है॥ ४९-५०॥

[हे देवि!] उस कपिलेश्वरलिङ्गका माहात्म्य कह दिया गया। इसे जिस किसीको नहीं बताना चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये, वहींपर नादेय अक्षर ब्रह्म कहा गया है॥ ५१-५२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे कपिलेश्वरमाहात्म्ये ओङ्कारनिर्णयो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'कपिलेश्वरमाहात्म्यमें ओंकारनिर्णय' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

कपिलेश्वरमें सिद्धि प्राप्त करनेवाले मुनियोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

तत्र स्थाने तु ये सिद्धास्तान् प्रवक्ष्याम्यहं पुनः।
महापाशुपता श्रेष्ठा मम पुत्रा महौजसः॥ १

अनन्यमनसः शुद्धाः सेवितोऽहं पुरा सदा।
शीतातपविनिर्मुक्तं प्रासादैरुपशोभितम्॥ २

कैलासपृष्ठे देवस्य यादृग्देवि गृहं शुभम्।
तदभ्यधिकरूपं तु कृत्वा देवस्य मन्दिरम्॥ ३

सेव्यते सिद्धतुल्यैस्तु सर्वसिद्धानुकम्पिभिः।
तदा सिद्धिरनुप्राप्ता निर्वाणाया गतिः पुरा॥ ४

कपिलेश्वरस्य चैवाग्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्मृतम्।
उद्दालक ऋषिस्तत्र सिद्धिं परमिकां गतः॥ ५

अन्यत् पश्चान्मुखं लिङ्गं स्थितं तत्र तथोत्तरे।
तस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धः पाराशर्यो महामुनिः॥ ६

अन्यत्तत्रैव संलग्ने स्थितं पश्चान्मुखं शुभम्।
तस्मिन्नायतने सिद्धो महाज्ञानी हि बाष्कलिः॥ ७

तस्यैव तु समीपस्थं स्थितं पूर्वामुखं प्रिये।
तत्र पाशुपतः सिद्धो भाववृत्तस्तु वै मुनिः॥ ८

तस्यैव पश्चिमे देवि मुखलिङ्गं तु तिष्ठति।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्त अरुणिर्नाम नामतः॥ ९

पश्चिमे अरुणीशस्य अन्यल्लिङ्गं तु तिष्ठति।
अस्मिन् पाशुपताचार्यो योगसिद्धो महामुनिः॥ १०

अन्यत्तत्रैव संलग्नं दक्षिणे लिङ्गमुत्तमम्।
तत्र सिद्धिं गतो देवि कौस्तुभो नाम वै ऋषिः॥ ११

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
महापाशुपतः सिद्धः सावर्णिस्तत्र वै मुनिः॥ १२

तस्याग्रे तु महल्लिङ्गं स्थितं पूर्वामुखं शुभम्।
अस्मिँल्लिङ्गे शिवः साक्षात् स्वयमेव व्यवस्थितः॥ १३

ईश्वर बोले—[हे देवि!] उस स्थानमें जो सिद्ध हुए हैं, अब मैं उनके विषयमें बताऊँगा। महापाशुपत, श्रेष्ठ, महातेजस्वी, अनन्य चित्तवाले तथा विशुद्धात्मा मेरे पुत्र वहाँ रहते हैं, उन्होंने पूर्वकालमें सदा मेरी सेवा की थी॥ १$^1/_2$॥

हे देवि! कैलासशिखरपर शीत-आतपसे रहित तथा महलोंसे सुशोभित भगवान् शिवका जैसा सुन्दर भवन है, उससे भी अधिक रूपवाला शिवमन्दिर बनाकर सिद्धतुल्य तथा सभी सिद्धोंपर अनुकम्पा करनेवालोंके द्वारा वह स्थान सेवित होता है, उस समय जो निर्वाणगति है, उन्होंने उस सिद्धिको प्राप्त किया॥ २—४॥

कपिलेश्वरके आगे पश्चिमाभिमुख लिङ्ग बताया गया है, वहाँ ऋषि उद्दालक परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे॥ ५॥

वहाँ उत्तर दिशामें पश्चिमकी ओर मुखवाला दूसरा लिङ्ग भी स्थित है, उस लिङ्गमें महामुनि पाराशर्य (व्यास) पूर्ण रूपसे सिद्ध हुए॥ ६॥

वहींपर समीपमें पश्चिमकी ओर मुखवाला दूसरा शुभ लिङ्ग विराजमान है, उस स्थानपर बाष्कलि [मुनि] सिद्ध तथा महाज्ञानी हुए॥ ७॥

हे प्रिये! उसीके समीपमें [अन्य] पूर्वमुख लिङ्ग स्थित है, वहाँ पशुपतिके भक्त मुनि भाववृत्त सिद्ध हुए॥ ८॥

हे देवि! उसीके पश्चिममें मुखलिङ्ग स्थित है, वहाँ अरुणि नामवाले ऋषिने परम सिद्धि प्राप्त की॥ ९॥

अरुणीशके पश्चिममें दूसरा लिङ्ग भी स्थित है, यहाँपर महामुनि पाशुपताचार्य योगमें सिद्ध हुए। वहींपर दक्षिण दिशामें समीपमें ही एक दूसरा उत्तम लिङ्ग विराजमान है, हे देवि! वहाँपर कौस्तुभ नामक ऋषिने सिद्धि प्राप्त की॥ १०-११॥

उसके दक्षिण भागमें पूर्वकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है, वहाँ महापाशुपत मुनि सावर्णि सिद्ध हुए॥ १२॥

उसके आगे पूर्वकी ओर मुखवाला महान् तथा

ओङ्कारमूर्तिमास्थाय स्थितोऽहं तत्र सुव्रते।
चत्वारो मुनयः सिद्धास्तस्मिँल्लिङ्गे यशस्विनि॥ १४

वामदेवस्तु सावर्णिरघोरः कपिलस्तथा।
तस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धा नन्दीशस्य प्रभावतः॥ १५

उत्तम लिङ्ग स्थित है। इस लिङ्गमें स्वयं साक्षात् शिव व्यवस्थित हैं, हे सुव्रते! मैं ओंकारमूर्ति धारण करके वहाँ स्थित हूँ। हे यशस्विनि! उस लिङ्गमें चार मुनि सिद्ध हुए हैं। वामदेव, सावर्णि, अघोर तथा कपिल उस लिङ्गमें नन्दीशके प्रभावसे सिद्ध हुए॥ १३-१५॥

तस्य देवस्य चाधस्ताद्गुहा सिद्धैस्तु वन्दिता।
श्रीमुखी नाम सा ज्ञेया योगसिद्धैस्तु सेविता॥ १६

उन प्रभुके नीचे सिद्धोंद्वारा वन्दित एक गुहा है, योगसिद्धोंके द्वारा सेवित उस गुहाको श्रीमुखी नामवाली जानना चाहिये॥ १६॥

तत्र पाशुपताः श्रेष्ठा मम लिङ्गार्चने रताः।
तेषां चैव निवासार्थं सा गुहा निर्मिता मया॥ १७

वहाँ श्रेष्ठ पाशुपत [भक्त] मेरे लिङ्गार्चनमें संलग्न रहते हैं, मैंने उन्हींके निवासके लिये उस गुहाका निर्माण किया है॥ १७॥

तस्य द्वारे तु सुश्रोणि सिद्ध अघोरो महामुनिः।
अनेनैव शरीरेण रुद्रत्वं गतवान् मुनिः॥ १८

हे सुश्रोणि! उसके द्वारपर महामुनि अघोर सिद्ध हुए हैं, वे मुनि इसी शरीरसे रुद्रत्वको प्राप्त हुए॥ १८॥

तत्र गत्वा त्रिरात्रं तु क्षपयेदेकमानसः।
नरो वा यदि वा नारी संसारं न विशेत् पुनः॥ १९

वहाँ जाकर कोई पुरुष अथवा स्त्री यदि एकाग्रचित्त होकर [उपवासपूर्वक] तीन रात व्यतीत करे, तो वह पुनः संसारमें प्रवेश नहीं करता है॥ १९॥

अघोरेश्वरदेवस्य चोत्तरे कूपमुत्तमम्।
तस्योपस्पर्शनाद्देवि वाजपेयं च विन्दति॥ २०

अघोरेश्वरदेवके उत्तरमें एक उत्तम कूप स्थित है, हे देवि! उसमें स्नान करनेसे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है॥ २०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

श्रीकण्ठ, ओंकारेश्वर और बृहस्पतीश्वर आदि लिङ्गोंकी महिमाका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं वक्ष्ये वाराणस्यां सुरेश्वरि।
यत्र साक्षात्स्वयं भद्रे रममाणं तु सर्वदा॥ १

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! हे भद्रे! अब मैं वाराणसीमें स्थित अन्य आयतनका वर्णन करूँगा, जहाँ सर्वदा साक्षात् स्वयं मैं विहार करता हूँ॥ १॥

मत्स्योदरीतटे रम्ये सुरसिद्धनमस्कृते।
रोचते मे सदा वासस्तस्मिन्नायतने शुभे॥ २

मत्स्योदरीके मनोहर तटपर देवताओं तथा सिद्धोंद्वारा नमस्कृत उस शुभ आयतनमें सदा निवास करना मुझे अच्छा लगता है॥ २॥

स्थानानामेव सर्वेषामतिरम्यं मम प्रियम्।
यत्र पाशुपता देवि मम लिङ्गार्चने रताः॥ ३

मम पुत्रास्तु ते सर्वे ब्रह्मचर्येण संयुताः।
शान्ता दान्ता जितक्रोधा सिद्धास्तत्र न संशयः॥ ४

हे देवि! वह सभी स्थानोंसे अधिक रम्य तथा मुझे [अत्यन्त] प्रिय है, जहाँ पशुपतिके भक्त मेरे लिङ्गार्चनमें रत रहते हैं। वहाँ ब्रह्मचर्यसे युक्त, शान्त, जितेन्द्रिय तथा क्रोधपर विजय प्राप्त किये हुए वे मेरे सभी पुत्र सिद्ध हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३-४॥

लोभादिविषयासक्तो नरकाच्च निवर्तते।
मम लिङ्गानि पुण्यानि पूजयति सदात्र यः॥ ५

यहाँपर जो सदा मेरे पुण्यप्रद लिङ्गकी पूजा करता है, वह लोभ आदि विषयोंमें आसक्त होनेपर भी नरकसे छूट जाता है॥ ५॥

तेषां मध्ये तु तत्रैव लिङ्गं वै पश्चिमामुखम्।
श्रीकण्ठनाम विख्यातं कपिलेश्वरदक्षिणे॥ ६

तस्मिन् पाशुपतः सिद्धः क्रतुध्वज इति स्मृतः।
मम चैव प्रसादेन योगैश्वर्यमवाप्नुयात्॥ ७

उनके मध्यमें वहींपर कपिलेश्वरके दक्षिणमें श्रीकण्ठ नामसे विख्यात पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसमें पाशुपत क्रतुध्वज सिद्ध हुए हैं—ऐसा कहा गया है, और उन्होंने मेरी कृपासे योगैश्वर्य प्राप्त किया था॥ ६-७॥

तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पूर्वमुखं स्थितम्।
तस्मिँल्लिङ्गे तु जाबालः सिद्धिं परमिकां गतः॥ ८

हे भद्रे! उसीके आगे पूर्वकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गमें [ऋषि] जाबाल परम सिद्धिको प्राप्त हुए॥ ८॥

अपरं चैव लिङ्गं तु तस्य दक्षिणतः स्थितम्।
ओङ्कारेश्वरनामानं देवानामपि दुर्लभम्॥ ९

तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो मुनिः कालिकवृक्षियः।
सर्वेषामेव सिद्धानामुत्तमोत्तमसंस्थितः॥ १०

उसके दक्षिणमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ ओंकारेश्वर नामक दूसरा लिङ्ग स्थित है, वहाँ मुनि कालिकवृक्षिय परम सिद्धिको प्राप्त हुए और सभी सिद्धोंमें श्रेष्ठतम हो गये॥ ९-१०॥

तस्यैव दक्षिणे भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
तस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धो गार्ग्यश्च सुमहातपाः॥ ११

हे भद्रे! उसीके दक्षिणमें पश्चिमकी ओर मुखवाला [एक] लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गमें परम तपस्वी गार्ग्य सिद्ध हुए हैं॥ ११॥

पञ्चायतनमेतं ते मया च कथितं शुभे।
न कस्यचिन्मयाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम्॥ १२

हे शुभे! मैंने तुमसे इस पंचायतनका वर्णन किया, मैंने इस अत्यन्त अद्भुत रहस्यको किसीको भी नहीं बताया है॥ १२॥

पञ्चब्रह्मेति विख्यातमेतदद्यापि सुन्दरि।
एतस्मात्कारणाद्देवि पञ्चायतनमुच्यते॥ १३

हे सुन्दरि! यह आज भी पंचब्रह्म नामसे विख्यात है, हे देवि! इसी कारणसे इसे पंचायतन कहा जाता है॥ १३॥

चतुराश्रमिणां पुण्यं यत्फलं प्रतिपठ्यते।
तत्फलं सकलं प्रोक्तं पञ्चायतनदर्शनात्॥ १४

चारों आश्रमियोंके लिये जो भी पुण्यफल कहा गया है, वह समस्त फल पंचायतनका दर्शन करनेमात्रसे बताया गया है॥ १४॥

इदं पाशुपतं श्रेष्ठं मदीयव्रतचारिणाम्।
योगिनां मोक्षलिप्सूनां संसारभयनाशनम्॥ १५

मेरा व्रत करनेवालोंके लिये यह श्रेष्ठ पाशुपतव्रत है और मोक्षकी इच्छावाले योगियोंके लिये संसारभयका नाश करनेवाला है॥ १५॥

नराणामल्पबुद्धीनां पापोपहतचेतसाम्।
भेषजं परमं प्रोक्तं पञ्चायतनमुत्तमम्॥ १६

तस्माद्यत्नं सदा कुर्यात्पञ्चायतनदर्शने।
पञ्चायतनसामीप्ये कूपस्तिष्ठति सुन्दरि॥ १७

तस्मिन् कूप उपस्पृश्य दीक्षाफलमवाप्नुयात्।
तस्मिन् दक्षिणदिग्भागे रुद्रवासः प्रकीर्तितः॥ १८

यह उत्तम पंचायतन अल्प बुद्धिवाले तथा पापसे नष्ट चित्तवाले मनुष्योंके लिये महान् औषध कहा गया है। अतः पंचायतनके दर्शनका सदा प्रयत्न करना चाहिये। हे सुन्दरि! पंचायतनके समीपमें एक कूप स्थित है, उस कूपमें मार्जन-स्नान करके मनुष्य [शिव-] दीक्षाका फल

रुद्रस्योत्तरपार्श्वे तु पञ्चायतनदक्षिणे।
तत्र कुण्डं महत् प्रोक्तं महापातकनाशनम्॥ १९

तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा अभीष्टं फलमाप्नुयात्।
चतुर्दश्यां यदा योग आर्द्रानक्षत्रसंयुतः॥ २०

तदा पुण्यतमः कालस्तस्मिन् स्नाने महाफलम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रुद्रं च भामिनि॥ २१

यत्र तत्र मृतो देवि रुद्रलोकं तु गच्छति।
पूर्वामुखस्थितश्चाहं तस्मिँल्लिङ्गे महेश्वरि॥ २२

रुद्राणां कोटिजप्येन यत्फलं प्रतिपद्यते।
तत्फलं लभते भद्रे तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ २३

रुद्रस्य च समीपे तु ऋषिभिः स्थापितानि च।
लिङ्गानि मम सुश्रोणि सर्वकामफलानि च॥ २४

रुद्रस्य नैर्ऋते भागे महालयमिति स्मृतम्।
दर्शनाच्च पदं तस्य महाभाग्यस्य सुन्दरि॥ २५

तत्र स्थाने शुभे रम्ये स्वयं तिष्ठति पार्वती।
तस्यैव चाग्रतो देवि कूपस्तिष्ठति निर्मलम्॥ २६

पितरस्तत्र तिष्ठन्ति ये दिव्या ये च मानुषाः।
तस्मिन् कूप उपस्पृश्य जलं सङ्गृह्य भामिनि॥ २७

पिण्डस्तत्र प्रदातव्यो मम देवि पदस्पृहः।
श्राद्धं तत्र प्रकुर्वीत अन्नाद्येनोदकेन च॥ २८

पिण्डः कूपे तु तत्रैव प्रेक्षप्तव्यः शुभानने।
एवं कृत्वा तु यस्तस्मिंस्तीर्थे रुद्रमहालये॥ २९

एकविंशकुलोपेतो रुद्रलोकं स गच्छति।
तत्र वैतरणी नाम दीर्घिका पश्चिमामुखी॥ ३०

तस्यां स्नात्वा वरारोहे नरकं न च पश्यति।
खण्डस्फुटितसंस्कारं यस्तत्र कुरुते शुभे॥ ३१

रुद्रलोकोऽक्षयस्तस्य सर्वकालं यशस्विनि।
महालयस्योत्तरेण लिङ्गानि सुमहान्ति च॥ ३२

प्राप्त करता है। उसके दक्षिण दिशाभागमें रुद्रवास कहा गया है॥ १६—१८॥

वहाँपर रुद्रके उत्तरभागमें तथा पंचायतनके दक्षिणमें महापापोंका नाश करनेवाला एक विशाल कुण्ड बताया गया है, उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य अभीष्ट फल प्राप्त करता है। जब चतुर्दशी तिथिमें आर्द्रा नक्षत्रसे संयुक्त योग हो, तब पुण्यतम काल होता है, उस समय उस [कुण्ड]-में स्नान करनेसे महान् फल होता है। हे भामिनि! हे देवि! उस तीर्थमें स्नान करके तथा रुद्रका दर्शन करके जहाँ कहीं भी मनुष्य मरता है, [तत्काल] रुद्रलोकको जाता है॥ १९—२१ $^{1}/_{2}$॥

हे महेश्वरि! मैं उस लिङ्गमें पूर्वकी ओर मुख किये हुए स्थित हूँ। हे भद्रे! करोड़ों रुद्रोंका जप करनेसे जो फल होता है, वह फल उस लिङ्गके दर्शनसे प्राप्त हो जाता है॥ २२-२३॥

हे सुश्रोणि! रुद्रके समीपमें समस्त वांछित फल प्रदान करनेवाले [अनेक] लिङ्ग ऋषियोंके द्वारा स्थापित किये गये हैं। रुद्रके नैर्ऋत्य दिशामें महालय बताया गया है, हे सुन्दरि! उसके दर्शनसे महाभाग्यका पद प्राप्त होता है॥ २४-२५॥

उस शुभ तथा रम्य स्थानपर स्वयं पार्वती विराजमान हैं। हे देवि! उसीके आगे निर्मल कूप स्थित है। जो दिव्य तथा मानुष पितर हैं, वे वहाँ रहते हैं। हे भामिनि! हे देवि! मेरे लोककी इच्छा रखनेवालेको चाहिये कि उस कूपमें स्नान करके जल लेकर वहाँ पिण्डदान करे॥ २६-२७ $^{1}/_{2}$॥

हे शुभानने! अन्न आदिसे तथा उस जलसे श्राद्ध करना चाहिये और वहींपर कूपमें पिण्डको छोड़ देना चाहिये। जो उस रुद्रमहालय तीर्थमें इस प्रकारसे [श्राद्ध] करता है, वह [अपनी] इक्कीस पीढ़ियोंसहित रुद्रलोकको जाता है। वहाँपर पश्चिमकी ओर मुखवाली वैतरणी नामक दीर्घिका (बावली) है, हे वरारोहे! उसमें स्नान करके मनुष्यको नरक नहीं देखना पड़ता है॥ २८—३० $^{1}/_{2}$॥

हे शुभे! हे यशस्विनि! जो वहाँपर खण्डस्फुटित-संस्कार करता है, उसे सदाके लिये अक्षय रुद्रलोक प्राप्त होता है। महालयके उत्तरमें अति महान् लिङ्ग विद्यमान

देवैः सर्वैर्महाभागैः स्थापितानि शुभार्थिभिः।
पश्चिमे तु दिशाभागे रुद्रकुण्डस्य भामिनि॥ ३३

हैं, जो मंगलकी कामनावाले सभी महाभाग्यशाली देवताओंके द्वारा स्थापित किये गये हैं॥ ३१–३२½॥

लिङ्गं तत्र स्थितं शुभ्रं देवाचार्य प्रतिष्ठितम्।
बृहस्पतीश्वरं नाम सर्वदुःखविनाशनम्॥ ३४

हे भामिनि! वहाँ रुद्रकुण्डके पश्चिम दिशाभागमें एक शुभ्र लिङ्ग स्थित है, सभी दुःखोंका नाश करनेवाला बृहस्पतीश्वर नामक वह लिङ्ग देवताओंके आचार्य (बृहस्पति)-के द्वारा स्थापित किया गया है॥ ३३–३४॥

पितृभिः स्थापितं लिङ्गं तटे कूपस्य दक्षिणे।
तेन पूजितमात्रेण पितरस्तृप्तिमाप्नुयुः॥ ३५

कूपके दक्षिण तटपर पितरोंके द्वारा [एक] लिङ्ग स्थापित किया गया है, उसके पूजनमात्रसे पितर तृप्त हो जाते हैं॥ ३५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

कामेश्वर, भीष्मेश्वर, वालखिल्येश्वर, सनकेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, दधीचेश्वर तथा कालेश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं श्रेष्ठं कालिपुर्यां सुरेश्वरि।
दक्षिणेन स्थितं देवं रुद्रवासस्य सुन्दरि॥ १

कामेश्वरमिति ख्यातं सर्वकामफलप्रदम्।
तप्तं तत्र तपस्तीव्रं कामदेवेन वै पुरा॥ २

कुण्डं तदुद्भवं देवि पद्मोत्पलसमन्वितम्।
कुण्डस्यैव तटे रम्ये उत्तमे वरवर्णिनि॥ ३

लिङ्गं तत्र स्थितं दिव्यं पश्चिमाभिमुखं प्रिये।
गन्धधूपनमस्कारैर्मुखवाद्यैश्च सर्वशः॥ ४

यो मामर्चयते तत्र तस्य तुष्याम्यहं सदा।
तुष्टे तु मयि देवेशि सर्वान् कामाँल्लभेत सः॥ ५

ततः प्रभृति वै तस्मिन्नन्येऽपि सुरपुङ्गवाः।
आराधयन्तो मां तस्मिंस्तीर्थं वक्तुं महातपाः॥ ६

यस्य यस्य यदा कामस्तत्र तं तं ददाम्यहम्।
ददामि सर्वकामांश्च धर्मं मोक्षं तथैव च॥ ७

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! हे सुन्दरि! कालिपुरीमें रुद्रवासके दक्षिणमें दूसरा श्रेष्ठ आयतन भी स्थित है, कामेश्वर नामसे विख्यात वह लिङ्ग सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है॥ १½॥

पूर्वकालमें वहाँ कामदेवने घोर तपस्या की थी, इससे हे देवि! कमलोंसे युक्त एक कुण्ड वहाँ उत्पन्न हो गया। हे वरवर्णिनि! हे प्रिये! वहाँ कुण्डके ही रम्य तथा उत्तम तटपर पश्चिमकी ओर मुखवाला दिव्य लिङ्ग स्थित है। वहाँपर जो [व्यक्ति] गन्ध, धूप, नमस्कार तथा मुखवादनके द्वारा विधिवत् मेरा अर्चन करता है, उसके ऊपर मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ, हे देवेशि! मेरे प्रसन्न हो जानेपर वह सभी इच्छित फलोंको प्राप्त कर लेता है॥ २—५॥

उसी समयसे दूसरे श्रेष्ठ देवता भी उस लिङ्गमें मेरी आराधना करते हुए वहाँ निवास करते हैं, महान् तपस्वी भी उस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ६॥

जिस किसीकी भी जो कामना होती है, मैं उस कामनाको पूर्ण करता हूँ। मैं सभी कामनाओं, धर्म तथा मोक्षको प्रदान करता हूँ॥ ७॥

तस्मादन्येऽपि ये केचित्तीर्थे तस्मिन् जनाः स्थिताः।
आराधयन्ते देवेशं कामेशं चैव सर्वदा॥ ८
यो यस्य मनसः कामः तं तमाप्नोति निश्चितम्।
कामेश्वरसमीपे तु दक्षिणे वरवर्णिनि॥ ९
तत्र स्नात्वा वरारोहे रुद्रस्यानुचरो भवेत्।
चैत्रे मासि सिते पक्षे त्रयोदश्यां तु मानवाः॥ १०
स्नानं ये च प्रकुर्वन्ति ते कामसदृशा नराः।
कामेश्वरं सदा लिङ्गं योऽर्चयतीह मानवः॥ ११
लभेद्विद्याधरं लोकमेवमेव न संशयः।
कामेश्वरस्य पूर्वेण नाम्ना पञ्चालकेश्वरम्॥ १२
धनदस्य तु पुत्रेण पूजितोऽहं सुरेश्वरि।
क्षेत्रं मम प्रियं ज्ञात्वा तस्मिन् देशे व्यवस्थितः॥ १३
आराधयति मां नित्यं मम पूजारतः सदा।
पञ्चालेश्वरनामाहं तस्मिन् देशे व्यवस्थितः॥ १४
नराणां धनदानं तु करिष्यामि यशस्विनि।
तत्र पूर्वमुखं देवि मुखलिङ्गं तु तिष्ठति॥ १५
पञ्चकेश्वरनामाहं तत्र देवि प्रतिष्ठितः।
कूपस्तस्यैव चाग्रे तु पावनः सर्वदेहिनाम्॥ १६
तस्मिन् स्थाने स्थिता देवि अघोरेशेति नामतः।
मानवानां हितार्थाय स्वयं तत्र व्यवस्थिता॥ १७
नव लिङ्गानि गुह्यानि स्थापितानि तु किन्नरैः।
पञ्चकेश्वरपूर्वेण दिवाकरनिशाकरौ॥ १८
लिङ्गानि तानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च।
दक्षिणेन तु तस्यैव अन्धकेशेति नामतः॥ १९
तत्र लिङ्गं महत्पुण्यमन्धकेन प्रतिष्ठितम्।
मम चैव प्रसादेन गतोऽसौ परमां गतिम्॥ २०
पश्चिमे तु दिशाभागे तस्य देवस्य सुन्दरि।
नाम्ना देवेश्वरं लिङ्गं कामकुण्डस्य दक्षिणे॥ २१
अहमेव सदा भद्रे तस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः।
भीष्मेश्वरं तु तत्रैव सिद्धेश्वरमतः परम्॥ २२
गङ्गेश्वरं तु तत्रैव यमुनेश्वरमेव च।
मण्डलेश्वरं तु तत्रैव ऊर्वशीलिङ्गमुत्तमम्॥ २३

अतः अन्य जो कोई भी लोग उस तीर्थमें रहते हैं, वे देवेश कामेश्वरकी सदा आराधना करते हैं॥ ८॥

उस समय जिसकी जो भी कामना होती है, वह [व्यक्ति] उस-उस कामनाको निश्चित रूपसे प्राप्त करता है। हे वरवर्णिनि! कामेश्वरके समीपमें दक्षिणमें जो कुण्ड है, हे वरारोहे! चैत्रमासमें शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको उसमें स्नान करके मनुष्य रुद्रका अनुचर हो जाता है। जो मनुष्य उसमें स्नान करते हैं, वे कामदेवके समान हो जाते हैं॥ ९-१०$^1/_2$॥

जो मनुष्य यहाँपर कामेश्वरलिङ्गकी सदा पूजा करता है, वह विद्याधरलोक प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११$^1/_2$॥

कामेश्वरके पूर्वमें पंचालकेश्वर नामक लिङ्ग है, हे सुरेश्वरि! मैं वहाँ धनद (कुबेर)-के पुत्रके द्वारा पूजित हूँ। मेरा प्रिय क्षेत्र जानकर वह उस देशमें स्थित रहकर प्रतिदिन मेरी आराधना करता है और सदा मेरी पूजामें संलग्न रहता है। हे यशस्विनि! मैं उस स्थानमें पंचालेश्वर नामसे स्थित हूँ और मनुष्योंको धनका दान करता हूँ॥ १२—१४$^1/_2$॥

हे देवि! वहाँ पूर्वकी ओर मुखवाला मुखलिङ्ग विराजमान है, हे देवि! मैं वहाँ पंचकेश्वर नामसे स्थित हूँ। उसीके आगे सभी देहधारियोंको पवित्र करनेवाला एक कूप स्थित है॥ १५-१६॥

हे देवि! उस स्थानपर अघोरेशा—इस नामसे भगवती स्थित हैं, वे मनुष्योंके कल्याणके लिये वहाँ स्वयं विराजमान हैं। वहाँ किन्नरोंके द्वारा नौ गुह्य लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। पंचकेश्वरके पूर्वमें सूर्य-चन्द्रलिङ्ग स्थित हैं॥ १७-१८॥

वे लिङ्ग पुण्यप्रद तथा सभी पापोंको नष्ट करनेवाले हैं। वहाँपर उसीके दक्षिणमें अन्धकेश—इस नामवाला महापुण्यप्रद लिङ्ग है, यह अन्धकके द्वारा स्थापित किया गया है, मेरी कृपासे वह [अन्धक] वहाँ परम गतिको प्राप्त हुआ था॥ १९-२०॥

हे सुन्दरि! उस देवके पश्चिम दिशाभागमें तथा कामकुण्डके दक्षिणमें देवेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! मैं ही उस स्थानपर सदा विराजमान हूँ। वहींपर भीष्मेश्वर तथा सिद्धेश्वर स्थित हैं॥ २१-२२॥

वहींपर गंगेश्वर तथा यमुनेश्वर हैं। वहींपर

अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि महात्मभिः।
तानि दृष्ट्वा तु मनुजः सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २४

मण्डलेश्वरसामीप्ये मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
शान्तेन स्थापितं लिङ्गं सर्वपापहरं शुभम्॥ २५

वायव्ये तु दिशाभागे द्रोणेश्वरसमीपतः।
वालखिल्येश्वरं नाम सुखदं सर्वदेहिनाम्॥ २६

तच्च पश्चान्मुखं लिङ्गं कामकुण्डस्य पश्चिमे।
वालखिल्येश्वरं दृष्ट्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २७

तस्यैव चाग्रतो भद्रे मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
वाल्मीकेश्वरनामानं तं च दृष्ट्वा न शोचति॥ २८

तस्यैव कामकुण्डस्य पुरा संस्थापितं तटे।
लिङ्गं तत्र महापुण्यं च्यवनेन प्रतिष्ठितम्॥ २९

तस्य दर्शनमात्रेण ज्ञानवान् जायते नरः।
वालखिल्येश्वरस्यैव दक्षिणे वरवर्णिनि॥ ३०

नाम्ना वातेश्वरं देवं सर्वपातकनाशनम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि वायुलोकं च गच्छति॥ ३१

अग्नीश्वरं तु तत्रैव भरतेशं तथैव च।
वरुणेशं तथा चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ ३२

एतान् दृष्ट्वा महादेवि यथेष्टां गतिमाप्नुयात्।
अन्यदायतनं पुण्यं सनकेन प्रतिष्ठितम्॥ ३३

सनकेश्वरनामानं सर्वसिद्धामरार्चितम्।
तेन दृष्टेन देवेशि राजसूयफलं लभेत्॥ ३४

धर्मेश्वरं तु तत्रैव दक्षिणे वरवर्णिनि।
नाम्ना धर्मेश्वरं देवं सर्वकामफलप्रदम्॥ ३५

अन्यत्तत्रैव लिङ्गं तु ऋषिभिः स्थापितं पुरा।
सनकेश्वरस्योत्तरतो नाम्ना गरुडकेश्वरम्॥ ३६

सिद्धिकामेन सुश्रोणि स्थापितं गरुडेन तु।
गरुडेश्वरस्य पुरतः स्थापितं ब्रह्मसूनुना॥ ३७

मण्डलेश्वर तथा उत्तम उर्वशीलिङ्ग विद्यमान हैं॥ २३॥

[हे देवि!] वहाँपर महात्माओंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं, उनका दर्शन करके मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ २४॥

मण्डलेश्वरके समीपमें मुखलिङ्ग स्थित है, सभी पापोंका नाश करनेवाला वह शुभ लिङ्ग 'शान्त' के द्वारा स्थापित किया गया है॥ २५॥

वायव्य दिशाभागमें द्रोणेश्वरके समीप वालखिल्येश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह सभी प्राणियोंको सुख देनेवाला है॥ २६॥

कामकुण्डके पश्चिममें स्थित वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है, वालखिल्येश्वरका दर्शन करके मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। हे भद्रे! उसीके आगे वाल्मीकेश्वर नामक मुखलिङ्ग स्थित है, उसका दर्शन करके मनुष्य शोकयुक्त नहीं होता है॥ २७-२८॥

उसी कामकुण्डके तटपर पूर्वकालमें [महर्षि] च्यवनके द्वारा स्थापित किया गया महापुण्यप्रद लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य ज्ञानी हो जाता है॥ २९ १/२॥

हे वरवर्णिनि! वालखिल्येश्वरके दक्षिणमें सभी पापोंका नाश करनेवाला वातेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य वायुलोकको जाता है॥ ३०-३१॥

वहींपर अग्नीश्वर, भरतेश तथा सभी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला वरुणेश—ये लिङ्ग स्थित हैं, हे महादेवि! इनका दर्शन करके मनुष्य अभीष्ट गति प्राप्त करता है। वहाँ दूसरा पुण्यप्रद लिङ्ग भी स्थित है, जो [महामुनि] सनकके द्वारा स्थापित किया गया है, सनकेश्वर नामक वह लिङ्ग सभी सिद्धों तथा देवताओंके द्वारा पूजित है। हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य राजसूययज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ३२—३४॥

हे वरवर्णिनि! वहींपर दक्षिण दिशामें धर्मेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह धर्मेश्वरलिङ्ग सभी वांछित फलोंको प्रदान करनेवाला है। वहींपर पूर्वकालमें ऋषियोंके द्वारा स्थापित किया गया अन्य लिङ्ग भी स्थित है। हे सुश्रोणि! सनकेश्वरके उत्तरमें गरुडकेश्वर नामक लिङ्ग है, जो सिद्धिकी इच्छावाले गरुडके द्वारा

भक्त्या सनत्कुमारेण स्थापितोऽहं वरानने।
तेन दृष्टेन देवेशि ज्ञानवान् जायते नरः॥ ३८

तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे सनन्देन प्रतिष्ठितम्।
तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्यते सिद्धिरुत्तमा॥ ३९

तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे स्थापितं ह्यासुरीश्वरम्।
तथैव पञ्चशिखिना स्थापितं च महात्मना॥ ४०

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु नातिदूरे व्यवस्थितम्।
शनैश्चरेण तत्रैव मुखलिङ्गं प्रतिष्ठितम्॥ ४१

शनैश्चरेश्वरं नाम सर्वलोकनमस्कृतम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि रोगैर्नैवाभिभूयते॥ ४२

अन्यच्चैव महापुण्यं काशीपुर्यां महाशये।
मार्कण्डेयस्तु विख्यातो मम चैव सदा प्रियः॥ ४३

तस्य लिङ्गस्य चाग्रे तु पश्चिमेन यशस्विनि।
मार्कण्डेयह्रदो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ ४४

मार्कण्डेयह्रदे स्नात्वा किं भूयः परिशोचति।
स्नानं दानं जपो होमः श्राद्धं च पितृतर्पणम्॥ ४५

तत्सर्वमक्षयं तत्र भवतीति न संशयः।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैव चतुर्मुखम्॥ ४६

रुद्रलोकः सदा तस्य पुनरावृत्तिदुर्लभः।
मार्कण्डेश्वरसामीप्ये उत्तरेण यशस्विनि॥ ४७

कूपो वै तिष्ठते तत्र सर्वतीर्थवरोऽनघे।
कूपस्य चोत्तरेणैव कुण्डमध्ये यशस्विनि॥ ४८

कुण्डेश्वरमिति ख्यातं सर्वसिद्धैस्तु वन्दितम्।
दीक्षां पाशुपतीं तीर्त्वा द्वादशाक्षरेण यत्फलम्॥ ४९

तत्फलं लभते देवि ब्राह्मणस्तु न संशयः।
कुण्डस्य पश्चिमे तीरे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ५०

स्कन्देन स्थापितं देवि ब्रह्मलोकगतिप्रदम्।
मार्कण्डेयस्य पूर्वेण नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ५१

स्थापित किया गया है॥ ३५-३६ १/२॥

गरुडेश्वरके सामने एक लिङ्ग स्थित है, हे वरानने! ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमारने भक्तिपूर्वक [वहाँ] मुझे स्थापित किया था, हे देवेशि! उस [लिङ्ग]-के दर्शनसे मनुष्य ज्ञानसम्पन्न हो जाता है॥ ३७-३८॥

उसीके उत्तरभागमें [मुनि] सनन्दके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग है, उसके दर्शनमात्रसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है॥ ३९॥

उसीके दक्षिण भागमें आसुरीश्वर लिङ्ग स्थापित है, वह महात्मा पंचशिखिके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ४०॥

वहींपर उसके दक्षिणभागमें समीपमें ही शनैश्चरके द्वारा स्थापित किया गया मुखलिङ्ग स्थित है, वह शनैश्चरेश्वर नामक लिङ्ग सभी लोकोंद्वारा नमस्कृत है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य रोगोंसे पीड़ित नहीं होता है॥ ४१-४२॥

हे महाशये! काशीपुरीमें अन्य महापुण्यप्रद लिङ्ग भी है, वह मार्कण्डेय नामसे विख्यात है और सर्वदा मेरा प्रिय है॥ ४३॥

हे यशस्विनि! उस लिङ्गके आगे पश्चिममें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मार्कण्डेयह्रद (कुण्ड) है, मार्कण्डेयह्रदमें स्नान करके मनुष्य किसी प्रकारके शोकसे सन्तप्त नहीं रहता है। वहाँ किया गया स्नान, दान, जप, होम, श्राद्ध तथा पितृतर्पण—सब कुछ अक्षय होता है, इसमें सन्देह नहीं है। उस कुण्डमें स्नान करके तथा चतुर्मुखका दर्शन करके मनुष्य पुनर्जन्मकी प्राप्ति न करानेवाले रुद्रलोकको जाता है॥ ४४—४६ १/२॥

हे यशस्विनि! हे अनघे! मार्कण्डेश्वरके समीपमें उत्तर दिशामें वहाँ सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ एक कूप विद्यमान है। हे यशस्विनि! कूपके उत्तरमें ही कुण्डके मध्यमें सभी सिद्धोंसे वन्दित कुण्डेश्वर—इस नामसे विख्यात लिङ्ग स्थित है॥ ४७-४८ १/२॥

हे देवि! द्वादशाक्षरके द्वारा पाशुपत दीक्षा प्राप्त करके ब्राह्मण जो फल पाता है, उस फलको उसके दर्शनमात्रसे प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। कुण्डके पश्चिम तटपर पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है, हे देवि! वह [लिङ्ग] स्कन्दके द्वारा स्थापित किया गया है, वह ब्रह्मलोककी गति प्रदान

शाण्डिल्येश्वरनामानं स्थितं तत्रैव सुन्दरि।
मुखलिङ्गं तु तं भद्रे पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ ५२

तं दृष्ट्वा मानवो देवि पशुपाशैः प्रमुच्यते।
अस्यैव दक्षिणे पार्श्वे नाम्ना भद्रेश्वरं स्मृतम्॥ ५३

तत्र पश्चान्मुखं लिङ्गं स्थापितं च ब्रह्मर्षिभिः।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि ब्राह्मण्यं लभते नरः॥ ५४

अन्यच्चैव महादेवि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
यो वै पूर्वं मया तुभ्यं कपालीशः प्रवर्तितः॥ ५५

तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गानि कथयाम्यहम्।
तत्र देवी स्वयं देवी श्रीर्वै तिष्ठति सर्वदा॥ ५६

श्रीकुण्डमिति विख्यातं तत्र कुण्डे वरानने।
तस्मिन् कुण्डेश्वरी देवी वरदा सर्वदेहिनाम्॥ ५७

तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवीं महाश्रियम्।
श्रिया न रहितः सो वै यत्र तत्राभिजायते॥ ५८

श्रियश्चोत्तरपार्श्वे तु कपालीशस्य दक्षिणे।
तत्र लिङ्गं महाभागे महालक्ष्म्या प्रतिष्ठितम्॥ ५९

पूर्वाभिमुखोऽहं तस्मिन् कुण्डस्यैव तु दक्षिणे।
स्नात्वा कुण्डे तु वै देवि तल्लिङ्गं ह्यर्चयिष्यति॥ ६०

नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु।
चामरासक्तहस्ताभिः स्त्रीभिः परिवृतः सदा॥ ६१

तिष्ठते सुविमानस्थो यावदाभूतसम्प्लवम्।
इह लोके यदा याति लक्ष्मीवान् रूपसंयुतः॥ ६२

धनधान्यसमायुक्तः कुले महति जायते।
स्वर्गलोकस्य तद्द्वारं रहस्यं देवनिर्मितम्॥ ६३

यदा मत्स्योदरीं यान्ति देवलोकाद्दिवौकसः।
तदा तेनैव मार्गेण स्त्रीभिः परिवृतः सुखम्॥ ६४

तेन सा प्रोच्यते देवि महाश्रीर्वरवर्णिनि।
एतत्तुभ्यं मया देवि रहस्यं परिकीर्तितम्॥ ६५

करनेवाला है॥ ४९-५०$\frac{1}{2}$॥

मार्कण्डेयके पूर्व समीपमें ही शाण्डिलेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे सुन्दरि! वहींपर मुखलिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुख किये हुए स्थित है॥ ५१-५२॥

हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य पशुपाशोंसे मुक्त हो जाता है। इसीके दक्षिण भागमें भद्रेश्वर नामक लिङ्ग कहा गया है, पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग ब्रह्मर्षियोंके द्वारा स्थापित किया गया है। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य ब्राह्मण्य प्राप्त करता है। हे महादेवि! अब मैं क्रमसे अन्य लिङ्गोंका वर्णन करूँगा॥ ५३-५४$\frac{1}{2}$॥

मैंने पूर्वमें आपसे जिस कपालीशके विषयमें बताया था, उसके दक्षिण दिशाभागमें स्थित लिङ्गोंको मैं बता रहा हूँ। हे देवि! वहाँपर स्वयं भगवती श्री सर्वदा विराजमान हैं॥ ५५-५६॥

हे वरानने! वहाँ श्रीकुण्ड बताया गया है, उस कुण्डमें सभी प्राणियोंको वर देनेवाली कुण्डेश्वरी देवी विराजमान हैं॥ ५७॥

उस कुण्डमें स्नान करके तथा देवी महालक्ष्मीका दर्शन करके मनुष्य जहाँ-कहीं भी रहता है, लक्ष्मीसे विहीन नहीं होता है॥ ५८॥

हे महाभागे! उस श्रीके उत्तरभागमें तथा कपालीशके दक्षिणमें महालक्ष्मीके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ५९॥

मैं कुण्डके दक्षिणमें पूर्वाभिमुख होकर स्थित हूँ। हे देवि! उस कुण्डमें स्नान करके यदि कोई पुरुष या स्त्री उस लिङ्गका अर्चन करेगा, तो उसके पुण्यफलको सुनो, वह प्रलयपर्यन्त हाथोंमें चँवर धारण की हुई स्त्रियोंसे सदा घिरा हुआ रहकर उत्तम विमानमें स्थित रहता है और जब इस लोकमें जन्म लेता है, तब लक्ष्मीवान्, रूपवान् तथा धनधान्यसे युक्त होकर महान् कुलमें उत्पन्न होता है। वह [कुण्ड] स्वर्गलोकका देवनिर्मित रहस्यमय द्वार है॥ ६०—६३॥

जब देवतालोग देवलोकसे मत्स्योदरीमें जाते हैं, तब उसी मार्गसे वह मनुष्य स्त्रियोंसे घिरा हुआ सुखपूर्वक प्रवेश करता है। हे देवि! हे वरवर्णिनि! इसीलिये वे महाश्री कही जाती हैं। हे देवि! मैंने यह

तस्य विष्णुध्रुवस्यैव पश्चिमाया दिशः स्थितम्।
स्थापितं मम लिङ्गं तु दधीचेन महर्षिणा॥ ६६

दधीचेश्वरनामानं ख्यातं सर्वसुरासुरैः।
तं दृष्ट्वा मनुजो देवि ऐश्वरं लोकमाप्नुयात्॥ ६७

दक्षिणे तु तदा तत्र गायत्र्या स्थापितं पुरा।
गायत्र्या दक्षिणे चैव सावित्र्या स्थापितं पुनः॥ ६८

एतौ पश्चान्मुखौ लिङ्गौ मम देवि प्रियौ सदा।
अस्य चैव तु पूर्वेण लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ६९

मत्स्योदरीतटे रम्ये स्थितं सत्पतयेश्वरम्।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि उत्तमां सिद्धिमाप्नुयात्॥ ७०

लक्ष्मीलिङ्गस्य देवेन लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
उग्रेश्वरे महत्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ७१

तेन दृष्टेन सुश्रोणि भवेज्जातिस्मरो नरः।
तस्यैव दक्षिणे देवि महत्कुण्डं व्यवस्थितम्॥ ७२

स्नात्वा कनखले यद्वत्पुण्यमुक्तं यशस्विनि।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा फलमाप्नोति तत्समम्॥ ७३

दधीचेशात्पश्चिमतो नाम्ना तु धनदेश्वरम्।
यत्र देवि तपस्तप्तं धनदेन महात्मना॥ ७४

तत्र कुण्डं महादेवि धनदेशस्य धीमतः।
तत्र स्नात्वा नरो देवि धनदेशं च पश्यति॥ ७५

तस्य तुष्टः कुबेरस्तु देवत्वं सम्प्रयच्छति।
अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि सुरासुरैः॥ ७६

तानि दृष्ट्वातिपुण्यानि स्वर्गलोकं व्रजेन्नरः।
धनदेशात् पश्चिमतो नाम्ना तु करवीरकम्॥ ७७

तेन दृष्टेन देवेशि सिद्धिं प्राप्नोति मानवः।
पुण्यानि तत्र लिङ्गानि स्थितानि परमेश्वरि॥ ७८

तस्य वायव्यकोणे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
मारीचेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम्॥ ७९

रहस्य आपको बता दिया॥ ६४-६५॥

उसी विष्णुध्रुवके पश्चिम दिशामें महर्षि दधीचके द्वारा स्थापित किया गया मेरा लिङ्ग स्थित है। वह लिङ्ग सभी देवताओं तथा असुरोंके द्वारा दधीचेश्वर नामसे कहा गया है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ईश्वरका लोक प्राप्त करता है॥ ६६-६७॥

उसके दक्षिणमें पूर्वकालमें गायत्रीके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग स्थित है और गायत्रीके दक्षिणमें सावित्रीके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग स्थित है। हे देवि! ये दोनों लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाले हैं तथा मेरे सर्वदा प्रिय हैं। इसके पूर्वमें पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ६८-६९॥

यह सत्पतयेश्वर नामक लिङ्ग मत्स्योदरीके रम्य तटपर स्थित है, हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है॥ ७०॥

लक्ष्मीलिङ्गके पास देवताके द्वारा पश्चिमकी ओर मुखवाला उग्रेश्वर नामक महापुण्यप्रद तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला लिङ्ग स्थित है, हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य जातिस्मर (पूर्वजन्मकी स्मृतिवाला) हो जाता है॥ ७१½॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें एक विशाल कुण्ड स्थित है, हे यशस्विनि! कनखलमें स्नान करनेसे जो पुण्य कहा गया है, मनुष्य उस कुण्डमें स्नान करके उसके समान फल प्राप्त कर लेता है॥ ७२-७३॥

हे देवि! दधीचेश्वरके पश्चिममें धनदेश्वर नामक लिङ्ग है, जहाँ महात्मा धनदने तपस्या की थी। हे महादेवि! वहाँपर बुद्धिमान् धनदेश्वरका कुण्ड स्थित है, हे देवि! जो मनुष्य उसमें स्नान करके धनदेश्वरका दर्शन करता है, उसपर प्रसन्न होकर कुबेर उसे देवत्व प्रदान करते हैं॥ ७४-७५½॥

[हे देवि!] वहाँपर देवताओं तथा असुरोंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं, उन महापुण्यप्रद लिङ्गोंका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। हे देवेशि! धनदेश्वरके पश्चिममें करवीरक नामक लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनसे मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। हे परमेश्वरि! वहाँ [अन्य] पुण्यप्रद लिङ्ग भी स्थित हैं॥ ७६—७८॥

उस [करवीरक]-के वायव्यकोणमें पश्चिमकी

तस्य चैवाग्रतो देवि स्थापितं कुण्डमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या भ्राजते भास्करो यथा॥ ८०

मारीचेशात्पश्चिमतो लिङ्गमिन्द्रेश्वरं महत्।
पश्चिमाभिमुखं देवि कुण्डस्य तटसंस्थितम्॥ ८१

इन्द्रेश्वराद्दक्षिणतो वापी कर्कोटकस्य च।
तत्र वीरजले स्नात्वा दृष्ट्वा कर्कोटकेश्वरम्॥ ८२

नागानां चाधिपत्यं तु जायते नात्र संशयः।
कर्कोटकाद्दक्षिणतो नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ८३

दृगिचण्डेश्वरं नाम ब्रह्महत्यापहारकम्।
तत्र पाशुपतः सिद्धः कौथुमिर्नाम नामतः॥ ८४

ज्ञानं पाशुपतं प्राप्य रुद्रलोकमितो गतः।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं कुण्डस्योत्तरतः स्थितम्॥ ८५

तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा दृगिचण्डेश्वरस्य तु।
रुद्रलोकमवाप्नोति त्यक्त्वा संसारसागरम्॥ ८६

तस्य पूर्वेण देवेशि दीर्घिकायास्तटे शुभे।
अग्नीश्वरं तु नामानं सर्वपापक्षयङ्करम्॥ ८७

तं दृष्ट्वा मानवो देवि अग्निलोकं तु गच्छति।
तस्यैव पूर्वदिग्भागे नाम्ना ह्याम्नातकेश्वरम्॥ ८८

तं दृष्ट्वा मनुजो भद्रे रुद्रस्यानुचरो भवेत्।
एकलिङ्गं तु तद्विद्यात् सूक्ष्मं च वरवर्णिनि॥ ८९

तस्यैवाम्नातकेशस्य दक्षिणे नातिदूरतः।
कुण्डं तदुद्भवं दिव्यं सुरलोकप्रदायकम्॥ ९०

उर्वशीश्वरनामानं स्थितं पश्चान्मुखं भुवि।
तं दृष्ट्वा मनुजो देवि गणत्वं लभते ध्रुवम्॥ ९१

कुण्डस्य नैर्ऋते भागे नातिदूरे कथञ्चन।
उर्वशीशसमीपे तु तालकर्णेश्वरं स्मृतम्॥ ९२

तं दृष्ट्वा मानवो देवि चण्डस्यैति सलोकताम्।
तस्यैव तु समीपे तु लिङ्गानि स्थापितानि च॥ ९३

ओर मुखवाला मारीचेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ७९॥

हे देवि! उसके आगे एक उत्तम कुण्ड स्थापित किया गया है, उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य सूर्यके समान दीप्तिमान् हो जाता है॥ ८०॥

मारीचेश्वरके पश्चिममें इन्द्रेश्वर नामक महान् लिङ्ग है। हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग कुण्डके तटपर स्थित है॥ ८१॥

इन्द्रेश्वरके दक्षिणमें कर्कोटककी वापी है, उस वीरजलमें स्नान करके तथा कर्कोटकेश्वरका दर्शन करके [मनुष्यको] नागोंका आधिपत्य प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है॥ ८२१/२॥

कर्कोटकेश्वरके दक्षिण समीपमें ही ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला दृगिचण्डेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वहाँपर पाशुपत कौथुमि नामवाले ऋषि सिद्धिको प्राप्त हुए और पाशुपत ज्ञान प्राप्त करके यहाँसे रुद्रलोकको गये॥ ८३-८४१/२॥

पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग कुण्डके उत्तरमें स्थित है, वहाँपर दृगिचण्डेश्वरके कुण्डमें स्नान करके मनुष्य संसारसागरका त्यागकर रुद्रलोक प्राप्त करता है॥ ८५-८६॥

हे देवेशि! उसके पूर्वमें कुण्डके उत्तम तटपर सभी पापोंका नाश करनेवाला अग्नीश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य अग्निलोकको जाता है॥ ८७१/२॥

उसीके पूर्व दिशाभागमें आम्नातकेश्वर नामक लिङ्ग है, हे भद्रे! उसका दर्शन करके मनुष्य रुद्रका अनुचर हो जाता है। हे वरवर्णिनि! उसे सूक्ष्म एकलिङ्ग जानना चाहिये॥ ८८-८९॥

उसी आम्नातकेश्वरके दक्षिण समीपमें ही देवलोककी प्राप्ति करानेवाला दिव्य कुण्ड स्थित है॥ ९०॥

वहाँ पश्चिमकी ओर मुखवाला उर्वशीश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य निश्चित रूपसे गणत्व प्राप्त करता है॥ ९१॥

कुण्डके नैर्ऋत्यभागमें समीपमें ही उर्वशीश्वरके पासमें तालकर्णेश्वरलिङ्ग बताया गया है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य चण्डका सालोक्य प्राप्त करता है॥ ९२१/२॥

गणैस्तु मम धर्मज्ञैः श्रेष्ठानि सुमहान्ति च।
तस्य पूर्वेण कूपस्तु तिष्ठते सुमहान् प्रिये॥ ९४

तस्मिन् कूपे जलं स्पृश्य पूतो भवति मानवः।
चण्डेश्वरस्य पूर्वं तु स्थितं चित्रेश्वरं शुभम्॥ ९५

तेन दृष्टेन देवेशि चित्रस्य समतां व्रजेत्।
चित्रेश्वरसमीपे तु स्थितं कालेश्वरं महत्॥ ९६

तेन दृष्टेन देवेशि कालं वञ्चति मानवः॥ ९७

देव्युवाच

कथं कालेश्वरो देवः केन वा वञ्चितः प्रभुः।
कस्मिन् स्थाने तु कः सिद्धस्तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर॥ ९८

ईश्वर उवाच

तस्मिन् स्थाने पुरा भद्रे पिङ्गाक्षो नाम वै मुनिः।
ज्ञानस्य वक्ता पञ्चार्थे लोके पाशुपतः स्थितः॥ ९९

तेन चैव पुरा भद्रे लिङ्गेऽस्मिन् स प्रसादितः।
ततो लिङ्गप्रभावेण कालं वञ्चितवान् मुनिः॥ १००

नान्ततो दृश्यते काल ईश्वरासक्तचेतसः।
तत्र स्थित्वा तु सुमहत्कालं यः कालयेत्प्रजाः॥ १०१

न तस्य क्रमितुं शक्तः कालो वै घोररूपिणः।
ततः प्रभृति येऽन्येऽपि तस्मिन्नायतने स्थिताः॥ १०२

तेषां नाक्रमते कालः वर्षलक्षायुतैरपि।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि रहस्यं वरवर्णिनि॥ १०३

तस्य देवस्य चाग्रे तु कूपस्तिष्ठति वै श्रुतः।
तत्र कालोदकं नाम उदकं देवि तिष्ठति॥ १०४

तस्यैव प्राशनाद्देवि पूतो भवति मानवः।
यैस्तु तत्रोदकं पीतं नरैः स्त्रीभिश्च कर्मभिः॥ १०५

स्वयं देवेन शर्वेण त्रिशूलाङ्केन चाङ्कितः।
न तेषां परिवर्तो वै कल्पकोटिशतैरपि॥ १०६

यत्पीत्वा भवबन्धोत्थभयं मुञ्चन्ति मानवाः।
एतद्देवि रहस्यं तु कालोदकमुदाहृतम्॥ १०७

[हे देवि!] उसीके समीपमें मेरे धर्मज्ञ गणोंके द्वारा श्रेष्ठ तथा अति महान् लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। हे प्रिये! उसके पूर्वमें एक अति महान् कूप स्थित है, उस कूपके जलका स्पर्श करके मनुष्य पवित्र हो जाता है॥ ९३-९४१/२॥

चण्डेश्वरके पूर्वमें शुभ चित्रेश्वरलिङ्ग स्थित है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य चित्रकी समता प्राप्त करता है। चित्रेश्वरके समीपमें महान् कालेश्वरलिङ्ग स्थित है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य कालको भी वंचित कर देता है॥ ९५—९७॥

देवी बोलीं—हे सुरेश्वर! प्रभु कालेश्वरदेव किस प्रकार तथा किसके द्वारा वंचित किये गये और किस स्थानपर कौन सिद्ध हुआ? इसे मुझे बताइये॥ ९८॥

ईश्वर बोले—हे भद्रे! पूर्वकालमें उस स्थानमें पंचभूतात्मक लोकमें ज्ञानके वक्ता पशुपतिभक्त पिंगाक्ष नामक मुनि रहते थे॥ ९९॥

हे भद्रे! उन्होंने ही पूर्वकालमें इस लिङ्गमें शिवको प्रसन्न किया था, इसीलिये उन मुनिने लिङ्गके प्रभावसे कालको वंचित किया॥ १००॥

ईश्वरमें आसक्त चित्तवालेको अन्ततक काल दृष्टिगत नहीं होता है। [हे देवि!] वहाँ सन्तानसहित रहकर जो दीर्घकालतक समय व्यतीत करता है, घोररूपी काल उसपर आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं होता है॥ १०११/२॥

उसी समयसे जो अन्य लोग भी उस आयतनमें स्थित रहते हैं, लाखों वर्षोंमें भी काल उनपर आक्रमण नहीं कर सकता है। हे वरवर्णिनि! मैं आपको दूसरा रहस्य भी बताऊँगा॥ १०२-१०३॥

उस लिङ्गके आगे एक प्रसिद्ध कूप स्थित है, हे देवि! वहाँपर कालोदक नामक उदक स्थित है, हे देवि! उसके प्राशन (पान)-से मनुष्य पवित्र हो जाता है। जिन पुरुषों तथा स्त्रियोंने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे उस जलका पान कर लिया, उन्हें मानो स्वयं भगवान् शिवने त्रिशूलांकसे अंकित कर दिया, सैकड़ों-करोड़ कल्पोंमें भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता है। उसका पान करके मनुष्य भवबन्धनसे होनेवाले भयसे मुक्त हो जाते हैं॥ १०४-१०६१/२॥

हे देवि! मैंने इस रहस्यमय कालोदकका वर्णन

दर्शनात्तस्य देवस्य महापातकिनोऽपि ये।
तेऽपि भोगान् समश्नन्ति न तेषां क्रमते भवः॥ १०८

कर दिया। [हे देवि!] जो महापातकी हैं, वे भी उस देवके दर्शनसे सुखोंको प्राप्त करते हैं और संसार उनपर आक्रमण नहीं करता है॥ १०७-१०८॥

तल्लिङ्गं सर्वलिङ्गानामुत्तमं परिकीर्तितम्।
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य रुद्रत्वं याति मानवः॥ १०९

वह लिङ्ग सभी लिङ्गोंमें श्रेष्ठ कहा गया है, उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य रुद्रत्व प्राप्त करता है॥ १०९॥

तत्र वापि हि यद्दत्तं दानं रुद्ररतात्मनाम्।
तद्वै महाफलं तेषां यच्छते भावितात्मनाम्॥ ११०

वहाँपर जो भी दान किया जाता है, वह उन भक्तिमय चित्तवालों तथा रुद्रमें रत मनवालोंको महाफल प्रदान करता है॥ ११०॥

खण्डस्फुटितसंस्कारं तत्र कुर्वन्ति ये नराः।
रुद्रलोकं समासाद्य मोदन्ते सुखिनः सदा॥ १११

जो मनुष्य वहाँपर खण्डस्फुटित संस्कार करते हैं, वे रुद्रलोक प्राप्त करके सदा आनन्दित तथा सुखी रहते हैं॥ १११॥

सिद्धिलिङ्गाश्रमं भग्नं दृष्ट्वा राज्ञे निवेदयेत्।
स्वतो वा परतो वापि ये कुर्वन्ति यथा तथा॥ ११२

ते भोगानां नराः पात्रमन्ते मोक्षस्य भाजनाः।

जो सिद्धिलिङ्गाश्रमको भग्न देखकर [उसके उद्धारके लिये] राजासे निवेदन करता है और जो लोग स्वयं अथवा दूसरोंके माध्यमसे इसे व्यवस्थित करते हैं, वे मनुष्य सुखोंके भागी होते हैं और अन्तमें मोक्षके भाजन होते हैं॥ ११२ $^{1}/_{2}$॥

मोक्षप्रदायिनं लिङ्गं यत्कार्यार्थस्य लिप्सया॥ ११३

राजप्रतिग्रहासक्ताः कृतकान् पूजयन्ति ये।
ते रुद्रशापनिर्दग्धाः पतन्ति नरके ध्रुवम्॥ ११४

राजप्रतिग्रहमें निरत जो लोग अपने स्वार्थकी अभिलाषासे मोक्ष प्रदान करनेवाले लिङ्गका पूजन-सत्कार आदि नहीं करते हैं, अपितु कृतघ्नोंका सम्मान करते हैं, वे रुद्रके शापसे दग्ध होकर निश्चित रूपसे नरकमें पड़ते हैं॥ ११३-११४॥

ये पुनः सिद्धिलिङ्गानां प्रासादानां स्वशक्तितः।
कुर्वन्ति पूजां सत्कारं ते मुक्ता नात्र संशयः॥ ११५

जो लोग अपने सामर्थ्यके अनुसार सिद्धिलिङ्गोंके प्रासादोंका पूजन तथा सत्कार करते हैं; वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११५॥

कालेश्वरे तु यो देवि नरः कारयते पुरम्।
एकविंशकुलोपेतो रुद्रलोके वसेच्चिरम्॥ ११६

हे देवि! जो मनुष्य कालेश्वरमें पुरका निर्माण कराता है, वह [अपनी] इक्कीस पीढ़ियोंसहित रुद्रलोकमें दीर्घकालतक वास करता है॥ ११६॥

तत्र पूजा जपो होमः कालेशे क्रियते हि यत्।
तत्र दीपप्रदानेन ज्ञानचक्षुर्भवेन्नरः॥ ११७

प्राप्नोति धूपदानेन तत्स्थानं रुद्रसेवितम्।

वहाँ कालेश्वरमें जो भी पूजन, जप, होम किया जाता है, वह फलदायक होता है। वहाँ दीपदान करनेसे मनुष्य ज्ञानचक्षु हो जाता है और धूपदानसे रुद्रसेवित स्थान प्राप्त करता है॥ ११७ $^{1}/_{2}$॥

जागरं ये प्रकुर्वन्ति कालेशस्यैव चाग्रतः॥ ११८

ते मृता वृषभारूढाः शूलहस्तास्त्रिलोचनाः।
भूत्वा रुद्रसमा भद्रे रुद्रलोकं तु ते गताः॥ ११९

जो लोग कालेश्वरके समक्ष [रात्रि] जागरण करते हैं, हे भद्रे! वे मरनेपर वृषभपर आरूढ होकर हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए तीन नेत्रोंसे युक्त हो रुद्रतुल्य होकर रुद्रलोकको जाते हैं॥ ११८-११९॥

बहुनात्र किमुक्तेन कालेशे देवि यत्कृतम्।
तत्सर्वमक्षयं देवि पुनर्जन्मनि जन्मनि॥ १२०

हे देवि! अधिक कहनेसे क्या लाभ, हे देवि! कालेश्वरमें जो भी किया जाता है, वह सब कुछ जन्म-जन्ममें अक्षय होता है॥ १२०॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं भूयो विस्तरतो मया।
न कस्यचिदिहाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः॥ १२१

मैंने यह सब विस्तारसे आपसे कह दिया, मैंने इसे किसीको भी नहीं बताया था, आपको इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये॥ १२१॥

कालेश्वरस्य देवस्य शिवस्यायतनं शुभम्।
कालेश्वरसमीपे तु दक्षिणे वरवर्णिनि॥ १२२
मृत्युना स्थापितं लिङ्गं सर्वरोगविनाशनम्।

यह कालेश्वर देव शिवका आयतन [अत्यन्त] शुभ है। हे वरवर्णिनि! कालेश्वरके समीप दक्षिण दिशामें मृत्युके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग विद्यमान है, वह सभी रोगोंका नाश करनेवाला है॥ १२२½॥

कूपस्य चोत्तरे भागे महालिङ्गानि सुव्रते॥ १२३
एकं दक्षेश्वरं नाम द्वितीयं कश्यपेश्वरम्।
पश्चान्मुखं तु यल्लिङ्गं तद्दक्षेश्वरसंज्ञकम्॥ १२४

हे सुव्रते! कूपके उत्तरभागमें [अनेक] महालिङ्ग स्थित हैं। उनमें एक दक्षेश्वर तथा दूसरा कश्यपेश्वर नामक लिङ्ग है। जो पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग है, वह दक्षेश्वर नामवाला है॥ १२३-१२४॥

दक्षेश्वरस्य पूर्वेण महाकालस्तु तिष्ठति।
कुण्डे स्नानं नरः कृत्वा महाकालं तु योऽर्चयेत्॥ १२५
अर्चितं तेन सुश्रोणि जगदेतच्चराचरम्।

दक्षेश्वरके पूर्वमें महाकाल स्थित हैं। हे सुश्रोणि! जो मनुष्य कुण्डमें स्नान करके महाकालका अर्चन करता है, उसने मानो इस चराचर जगत्का पूजन कर लिया॥ १२५½॥

दक्षिणस्यां दिशि तथा तस्य कुण्डस्य वै तटे॥ १२६
स्थापितं देवलिङ्गं तु अन्तकेन महात्मना।
महत्फलमवाप्नोति तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ १२७

उसके दक्षिण दिशामें तथा कुण्डके तटपर ही महात्मा अन्तकके द्वारा देवलिङ्ग स्थापित किया गया है, उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य महान् फल प्राप्त करता है॥ १२६-१२७॥

अन्तकेश्वरसामीप्ये लिङ्गं वै दक्षिणे स्थितम्।
शक्रेश्वरेति नामानं स्थापितं शक्रहस्तिना॥ १२८

अन्तकेश्वरके समीप दक्षिणमें शक्रेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह शक्रहस्तीके द्वारा स्थापित किया गया है॥ १२८॥

तस्यैव दक्षिणे भागे मातलीश्वरमुत्तमम्।
संस्थापितं मातलिना सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ १२९

उसीके दक्षिण भागमें उत्तम मातलीश्वर [नामक] लिङ्ग है, सभी प्रकारका सुख प्रदान करनेवाला वह लिङ्ग मातलिके द्वारा स्थापित किया गया है॥ १२९॥

देवस्य चाग्रतः कुण्डे तत्र तीर्थं वरानने।
हस्तिपालेश्वरस्याग्रे कुण्डे तिष्ठति भामिनि॥ १३०
तप्तं यत्र पुरा भद्रे अन्तकेनान्तकारिणा।
हस्तीश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ १३१
विजयेश्वरनामानं सुरसिद्धैस्तु पूजितम्।
महाकालस्य कुण्डं तु उत्तरे वरवर्णिनि॥ १३२

हे वरानने! वहाँपर देवके आगे कुण्डमें एक तीर्थ विद्यमान है, हे भामिनि! हस्तिपालेश्वरके आगे कुण्डमें वह स्थित है, जहाँ हे भद्रे! अन्त (मृत्यु) करनेवाले अन्तकके द्वारा पूर्वकालमें तप किया गया था। हस्तीश्वरके पूर्वमें देवताओं तथा सिद्धोंद्वारा पूजित विजयेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे वरवर्णिनि! उत्तरमें महाकालका कुण्ड है॥ १३०—१३२॥

बलिनाराधितश्चाहं तस्मिन् स्थाने तु पार्वति।
बलिकुण्डं तु विख्यातं वाराणस्यां मम प्रियम्॥ १३३
तस्य कुण्डस्य पूर्वेण लिङ्गं स्थापितवान् बलिः॥ १३४

हे पार्वति! बलिने उस स्थानमें मेरी आराधना की थी। वाराणसीमें मेरा प्रिय बलिकुण्ड विख्यात है, उस कुण्डके पूर्वमें बलिने मेरे लिङ्गकी स्थापना की थी॥ १३३-१३४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

कृत्तिवासेश्वर तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका वर्णन

विद्याविघ्नेश्वरा रुद्राः शिवा ये च प्रकीर्तिताः।
कृत्तिवासेश्वरो यत्र तत्र सर्वे व्यवस्थिताः॥ १

[**ईश्वर बोले—**] जो विद्याविघ्नेश्वर रुद्र शिव कहे गये हैं, वे सब जहाँ कृत्तिवासेश्वर हैं, वहाँ स्थित हैं॥ १॥

तस्मिन् स्थाने महादैत्यो हस्ती भूत्वा ममान्तिकम्।
तस्य कृत्तिं विदार्याशु करिणं स्वञ्जनप्रभम्॥ २

वासं तु कृतवान् पूर्वं कृत्तिवासस्ततो ह्यहम्।
अविमुक्ते स्थितश्चाहं तस्मिन् स्थाने महामुने॥ ३

उस स्थानमें एक महादैत्य हाथी बनकर मेरे पास आया था, तब मैंने अंजनकी प्रभावाले उस हाथीको शीघ्र ही विदीर्ण करके उसके चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण कर लिया, तबसे मैं कृत्तिवास नामवाला हो गया और हे महामुने! मैं उस अविमुक्त स्थानमें स्थित हूँ॥ २-३॥

लिङ्गं दारुवने गुह्यमृषिसङ्घैस्तु पूजितम्।
पश्चिमाभिमुखश्चाहं तस्मिन्नायतने स्थितः॥ ४

दारुवनमें ऋषियोंद्वारा पूजित एक गुह्य लिङ्ग है, मैं उस आयतनमें पश्चिमकी ओर मुख किये हुए स्थित हूँ॥ ४॥

अन्तकेश्वरलिङ्गं तु मम चाग्रे स्थितं शुभम्।
उत्तरे मम लिङ्गं तु स्थापितं शक्रहस्तिना॥ ५

मेरे सामने शुभ अन्तकेश्वरलिङ्ग स्थित है। मेरे उत्तरमें शक्रहस्तीके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ५॥

मातलीश्वरलिङ्गं तु दक्षिणेन स्थितं मम।
मम पूर्वेण कूपस्तु नानासिद्धिसमन्वितः॥ ६

अणिमाद्यास्तथाष्टौ च सिद्धयस्तत्र संस्थिताः॥ ७

मातलीश्वरलिङ्ग मेरे दक्षिणमें स्थित है। मेरे पूर्वमें विविध सिद्धियोंसे युक्त एक कूप विराजमान है, अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ वहाँ विद्यमान हैं॥ ६-७॥

ये ते पाशुपतास्तत्र मध्यमेश्वरसंस्थिताः।
तेषामनुग्राहार्थं च कृत्तिवासाः स्थितः पुरा॥ ८

जो भी पाशुपत हैं, वे वहाँ मध्यमेश्वरमें रहते हैं, उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये मैं कृत्तिवासरूपमें वहाँ स्थित हूँ॥ ८॥

रुद्राणां तु शरीरं तु मध्यमेश्वरमीश्वरम्।
कृत्तिवासाः शिवः प्राहुरेतद्गुह्यतरं मम॥ ९

भगवान् मध्यमेश्वर रुद्रोंके शरीर हैं। कृत्तिवास ही शिव हैं। इसे मेरा परम गुह्य लिङ्ग कहा गया है॥ ९॥

अन्ये च बहवः सिद्धा ऋषयस्तत्र संस्थिताः।
उपासन्ति च मां नित्यं मद्भावगतमानसाः॥ १०

अन्य बहुत-से सिद्ध ऋषि वहाँ रहते हैं और मेरी भक्तिसे युक्त चित्तवाले होकर नित्य मेरी उपासना करते हैं॥ १०॥

वाराणस्यां प्रमुच्यन्ते ये जनास्तत्र संस्थिताः।
कृमिकीटाः प्रमुच्यन्ते महापातकिनश्च ये॥ ११

स्मरणाद्विप्र लिङ्गस्य पापं वै भस्मसाद्भवेत्॥ १२

जो लोग वाराणसीमें वहाँ रहते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। कृमि-कीट तथा [अन्य] जो महापातकी हैं, वे भी मुक्त हो जाते हैं। हे विप्र! लिङ्गके स्मरणसे पाप भस्मसात् हो जाता है॥ ११-१२॥

कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं ये यजन्ति शुभान्विताः।
ते रुद्रस्य शरीरे तु प्रविष्टा अपुनर्भवाः॥ १३

अनेनैव शरीरेण प्राप्ता निर्वाणमुत्तमम्।
बहूनि तत्र तीर्थानि संख्या कर्तुं न शक्यते॥ १४

कल्याणकी कामनावाले जो लोग कृत्तिवासेश्वर-लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे रुद्रके शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं और पुनर्जन्मरहित हो जाते हैं, वे इसी शरीरसे उत्तम निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं॥ १३½॥

दशकोटिसहस्राणि तीर्थान्यत्रैव वै मुने।
कृत्तिवासेश्वरो यत्र तत्र सर्वे व्यवस्थिता:॥ १५
तस्मिँल्लिङ्गे तु सान्निध्यं त्रिकालं नात्र संशय:।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणामप्रकाश्यं कृतं मया॥ १६
यत्र तीर्थान्यनेकानि कृतानि बहुभिर्द्विजै:।
पुलस्त्याद्यैर्महाभागैर्लोमशाद्यैर्महात्मभि: ।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं न जानन्ति सुरासुरा:॥ १७

भृगुरुवाच

कृते त्रेताद्वापरे च कलौ च परमेश्वरम्।
महागुह्यातिगुह्यं च संसारार्णवतारकम्॥ १८
केन कार्येण देवेश त्वयेदं न प्रकाशितम्।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गमविमुक्ते तु संस्थितम्॥ १९

ईश्वर उवाच

दशकोटिसहस्राणि आगच्छन्ति दिने दिने।
धर्मक्रियाविनिर्मुक्ता: सत्यशौचविवर्जिता:॥ २०
देवद्विजगुरून्नित्यं निन्दन्तो भक्तिवर्जिता:।
मायामोहसमायुक्ता दम्भमोहसमन्विता:॥ २१
शूद्रान्ननिरता विप्रा विह्वला रतिलालसा:।
कृत्तिवासेश्वरं प्राप्य ते सर्वे विगतज्वरा:॥ २२
संसारभयनिर्मुक्ता: सर्वपापविवर्जिता:।
सुखेन मोक्षमायान्ति यथा सुकृतिनस्तथा॥ २३
दिव्यैर्विमानैरारूढा: किङ्किणीरवकान्वितै:।
देवानां भुवनं लभ्यं ते यान्ति परमं पदम्॥ २४
जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षो लभ्येत वा न वा।
एकेन जन्मना तत्र कृत्तिवासे तु लभ्यते॥ २५
पूर्वजन्मकृतं पापं तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्।
तत्र सिद्धेश्वरं नाम मुखलिङ्गं तु संस्थितम्॥ २६
अन्तकेश्वरदेवस्य स्थितं चैवोत्तरेण तु।
आलयं सर्वसिद्धानां तत्स्थानं परमं महत्॥ २७
अव्ययं शाश्वतं दिव्यं विरजं ब्रह्मणालयम्।
शक्तिमूर्तिस्थितं शान्तं शिवं परमकारणम्॥ २८
अव्यक्तं शाश्वतं सूक्ष्मं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं महत्॥ २९

वहाँ अनेक तीर्थ हैं, उनकी संख्या नहीं बतायी जा सकती है, हे मुने! वहींपर दस हजार करोड़ तीर्थ हैं। जहाँ कृत्तिवासेश्वरलिङ्ग है, वहाँ वे सभी [तीर्थ] विद्यमान हैं॥ १४-१५॥

उस लिङ्गमें त्रिकाल उनका सान्निध्य रहता है, इसमें सन्देह नहीं है। मैंने ब्रह्मा, विष्णु तथा सुरेन्द्रसे भी इसे प्रकाशित नहीं किया॥ १६॥

जहाँ बहुत-से द्विजों तथा पुलस्त्य, लोमश आदि भाग्यशाली महात्माओंके द्वारा अनेक तीर्थ निर्मित किये गये हैं, उस कृत्तिवासेश्वरलिङ्गको देवता तथा असुर भी नहीं जानते हैं॥ १७॥

भृगु बोले—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुगमें यह परम ऐश्वर्यसम्पन्न और गुह्य-से-गुह्य लिङ्ग संसारसागरसे पार करनेवाला है, हे देवेश! आपने अविमुक्त [क्षेत्र]-में स्थित इस कृत्तिवासेश्वर लिङ्गको किस कारणसे प्रकाशित नहीं किया?॥ १८-१९॥

ईश्वर बोले—दस हजार करोड़ तीर्थ यहाँ प्रतिदिन आते हैं, धर्मक्रियासे विहीन, सत्य-शौचसे रहित, देवताओं, द्विजों तथा गुरुओंकी सदा निन्दा करनेवाले, भक्तिहीन, मायामोहसे युक्त, दम्भ-मोहसे समन्वित, शूद्रोंके अन्नका सेवन करनेवाले, विह्वल तथा रतिकी लालसावाले सभी विप्र कृत्तिवासेश्वरमें आकर सन्तापरहित हो जाते हैं॥ २०—२२॥

संसारके भयसे मुक्त तथा सभी पापोंसे रहित होकर वे पुण्यात्माओंकी भाँति सुखपूर्वक मोक्ष प्राप्त करते हैं॥ २३॥

सुन्दर किंकिणियोंकी ध्वनिसे समन्वित दिव्य विमानोंमें बैठकर वे देवताओंके लिये सुलभ परम पद प्राप्त करते हैं। हजारों जन्मोंमें मोक्ष मिले अथवा नहीं, किंतु कृत्तिवासमें एक ही जन्ममें [मोक्ष] प्राप्त हो जाता है॥ २४-२५॥

उस लिङ्गके दर्शनसे पूर्वजन्ममें किया गया पाप नष्ट हो जाता है। वहाँ सिद्धेश्वर नामक मुखलिङ्ग भी स्थित है, वह अन्तकेश्वरदेवके उत्तरमें है। वह स्थान सभी सिद्धोंका आलय, अति महान्, अव्यय, शाश्वत, दिव्य, विशुद्ध, ब्रह्मका आलय, शक्ति-मूर्तिस्थित, शान्त, कल्याणमय, परमकारणस्वरूप, अव्यक्त, सनातन, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मसे भी परम सूक्ष्म है॥ २६—२९॥

ईश्वर उवाच

एतद्दारुवनस्थानं कलौ देवस्य गीयते।
परात्परं तु यज्ज्ञानं मोक्षमार्गप्रदायकम्॥ ३०
प्राप्यते द्विजशार्दूल कृत्तिवासे न संशयः।
कृते तु त्र्यम्बकं प्रोक्तं त्रेतायां कृत्तिवाससम्॥ ३१
माहेश्वरं तु देवस्य द्वापरे नाम गीयते।
हस्तिपालेश्वरं नाम कलौ सिद्धैस्तु गीयते॥ ३२
दण्डिरूपधरेणैव देवदेवेन शम्भुना।
द्विजेष्वनुग्रहश्चात्र तत्र स्थाने कृतः पुरा॥ ३३
युगे युगे तु तत्त्वज्ञा ब्राह्मणाः शान्तचेतसः।
उपासते च मां नित्यं जपन्ति शतरुद्रियम्॥ ३४
आदेहपतनाद्विप्रास्तस्मिन् क्षेत्र उपासकाः।
जपन्ति रुद्राध्यायं ते स शिवः कृत्तिवाससम्॥ ३५
तेषां देवः सदा तुष्टो दिव्यान् लोकान् प्रयच्छति।
ये ते जप्ता मया रुद्राः शङ्कुकर्णालये पुरा॥ ३६
तेऽविमुक्ते तु तिष्ठन्ति कृत्तिवासे न संशयः।
द्वारं यत् सांख्ययोगानां सा तेषां वसतिः स्मृता॥ ३७
श्यामास्तु पुरुषा रौद्रा वैद्युता हरिपिङ्गलाः।
अशरीराः शरीरा ये ते च सृष्टा मया पुरा॥ ३८
नीलकण्ठाः श्वेतमुखा बिम्बोष्ठाश्च कपर्दिनः।
हरित्केशाः शृङ्गिणश्च लम्बोष्ठास्तिग्महेतयः॥ ३९
असंख्याः परिसंख्यातास्तथान्ये च सहस्रशः।
तेऽविमुक्ते तु तिष्ठन्ति कृत्तिवाससमीपतः॥ ४०
रुद्राणां तु शिवो ज्ञेयं कृत्तिवासेश्वरं परम्।
तेन तैः प्रेरिता यान्ति दुष्प्रापमकृतात्मभिः॥ ४१
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा मानुष्यं बहुकिल्बिषम्।
अविमुक्ते तु वस्तव्यं जप्तव्यं शतरुद्रियम्॥ ४२
कृत्तिवासेश्वरो देवो द्रष्टव्यश्च पुनः पुनः।
यदीच्छेत्तारकं ज्ञानं शाश्वतं चामृतप्रदम्॥ ४३
एतत्सर्वं प्रकर्तव्यं यदीच्छेन्मामकं पदम्॥ ४४
गजवक्त्रः स्वयम्भूतस्तिष्ठत्यत्र विनायकः।
कूष्माण्डराजशम्भुश्च जयन्तश्च मदोत्कटः॥ ४५

ईश्वर बोले—यह दारुवन स्थान कलियुगमें शिवका स्थान कहा जाता है। हे द्विजश्रेष्ठ! जो मोक्षमार्ग देनेवाला परात्पर ज्ञान है, वह कृत्तिवासमें प्राप्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। सत्ययुगमें [शिवका नाम] त्र्यम्बक तथा त्रेतामें कृत्तिवास कहा गया है॥ ३०-३१॥

द्वापरमें शिवका नाम माहेश्वर कहा जाता है। कलियुगमें सिद्धोंके द्वारा शिवका नाम हस्तिपालेश्वर कहा जाता है॥ ३२॥

पूर्वकालमें देवदेव शम्भुने दण्डीका रूप धारण करके उस स्थानपर द्विजोंपर अनुग्रह किया था। शान्त चित्तवाले तत्त्वज्ञ ब्राह्मण प्रत्येक युगमें [वहाँ] नित्य मेरी उपासना करते हैं और शतरुद्रिय मन्त्रका जप करते हैं॥ ३३-३४॥

वे उपासक विप्र देहके पतनपर्यन्त (मृत्युकालतक) उस क्षेत्रमें रुद्राध्यायका जप करते हैं, वे कृत्तिवासेश्वर भगवान् शिव उनके ऊपर प्रसन्न होकर उन्हें सदा दिव्य लोक प्रदान करते हैं। मैंने पूर्वकालमें शंकुकर्णालयमें जिन रुद्रोंका जप किया था, वे अविमुक्त [क्षेत्र] कृत्तिवासमें स्थित हैं, इसमें संशय नहीं है। जो सांख्ययोगोंका द्वार है, वह उन सबका निवासस्थान कहा गया है॥ ३५—३७॥

मैंने पूर्वकालमें श्याम, रौद्र, वैद्युत, हरिपिंगल, अशरीरी, शरीरी, नीलकण्ठ, श्वेतमुख, बिम्बोष्ठ, कपर्दी, हरित्केश, शृंगी, लम्बोष्ठ, तिग्महेति नामवाले जिन असंख्य तथा अन्य हजारों पुरुषोंकी सृष्टि की थी, वे कृत्तिवासके समीप अविमुक्तमें रहते हैं॥ ३८—४०॥

श्रेष्ठ कृत्तिवासेश्वरको रुद्रोंका शिव जानना चाहिये, अतः उन [रुद्रों]-के द्वारा प्रेरित किये गये भक्त पुण्यरहित आत्मावालोंके द्वारा दुष्प्राप्य लोकको जाते हैं॥ ४१॥

[इसलिये] अनेक पापोंसे युक्त इस मानवशरीरको नश्वर समझकर अविमुक्तमें वास करना चाहिये, शतरुद्रियमन्त्रका जप करना चाहिये और बार-बार कृत्तिवासेश्वरदेवका दर्शन करना चाहिये॥ ४२ $^1/_2$ ॥

यदि कोई शाश्वत तथा अमृत प्रदान करनेवाले तारक ज्ञानकी इच्छा करता हो और यदि मेरे लोककी इच्छा करता हो, तो उसे यह सब करना चाहिये॥ ४३-४४॥

यहाँपर स्वयम्भू गजानन, विनायक, कूष्माण्डराज-

सिंहव्याघ्रमुखाः केचिद्विकटाः कुब्जवामनाः।
यत्र नन्दी महाकालः चित्रघण्टो महेश्वरः॥ ४६
दृगिचण्डेश्वरश्चैव घण्टाकर्णो महाबलः।
एते चान्ये च बहवो गणा रुद्रेश्वराय वै॥ ४७
रक्षन्ति सततं सर्वे अविमुक्तं हि मे गृहम्।
अयनं तूत्तरं ज्ञेयं दृगिचण्डेश्वरं मम॥ ४८
दक्षिणं शङ्कुकर्णं तु ओङ्कारं विषुवं मम।
दशकोट्यस्तु तीर्थानां संविशन्त्यथ पर्वणि॥ ४९
रहस्यं विप्रमन्त्राणां गोपनीयं प्रयत्नतः।
यच्च पाशुपतं प्रोक्तं पदं सम्यङ्निषेवितम्॥ ५०
पूजनात्तदवाप्नोति षण्मासाभ्यन्तरेण तु।
ममैव प्रीतिरतुला तस्मिन्नायतने सदा॥ ५१
अन्ये च बहवस्तत्र सिद्धलिङ्गाश्च सुव्रते।
सर्वेषामेव स्थानानां तत्स्थानं तु ममाधिकम्।
ज्ञात्वा कलियुगं घोरमप्रकाश्यं कृतं मया॥ ५२
न सा गतिः प्राप्यते यज्ञदानै-
तीर्थाभिषेकैर्न तपोभिरुग्रैः।
अन्यैश्च धर्मैर्विविधैः शुभैर्वा
या कृत्तिवासे तु जितेन्द्रियैश्च॥ ५३
दर्शनाद्देवदेवस्य ब्रह्महापि प्रमुच्यते।
स्पर्शने पूजने चैव सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ ५४
श्रद्धया परया देवं येऽर्चयन्ति सनातनम्।
फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः॥ ५५
पुष्पैः फलैस्तथान्यैश्च भक्ष्यैरुच्चावचैस्तथा।
क्षीरेण मधुना चैव तोयेन सह सर्पिषा॥ ५६
तर्पयन्ति परं लिङ्गमर्चयन्ति देवं शुभम्।
हुडुङ्कारनमस्कारैः नृत्यगीतैस्तथैव च॥ ५७
मुखवाद्यैरनेकैश्च स्तोत्रमन्त्रैस्तथैव च।
उपोष्य रजनीमेकां भक्त्या परमया हरम्॥ ५८
ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम्।
भूता हि चैत्रमासस्य अर्चयेत्परमेश्वरम्॥ ५९
स वित्तेशपुरं प्राप्य क्रीडयेत् यक्षराडिव।
वैशाखस्य चतुर्दश्यां योऽर्चयेत्प्रयतः शिवम्॥ ६०

शम्भु, जयन्त तथा मदोत्कट स्थित हैं॥ ४५॥

यहाँ कुछ सिंह-व्याघ्रके समान मुखवाले, विकट, टेढ़े तथा बौने [गण] भी विद्यमान हैं। यहाँ नन्दी, महाकाल, चित्रघण्ट, महेश्वर, दृगिचण्डेश्वर, घण्टाकर्ण, महाबल—ये सब तथा रुद्रेश्वरके अन्य बहुत-से गण मेरे अविमुक्त गृहकी निरन्तर रक्षा करते हैं॥ ४६-४७½॥

दृगिचण्डेश्वरको मेरा उत्तर अयन, शंकुकर्णको दक्षिण अयन और ओंकारको मेरा विषुव जानना चाहिये। दस करोड़ तीर्थ पर्वके अवसरपर यहाँ प्रवेश करते हैं॥ ४८-४९॥

विप्र-मन्त्रोंके रहस्यको प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। भलीभाँति निषेवित जो पाशुपतपद कहा गया है, वह इसके पूजनसे छः महीनोंके भीतर ही प्राप्त हो जाता है। उस आयतनमें मेरी अतुलनीय प्रीति सर्वदा रहती है॥ ५०-५१॥

हे सुव्रते! वहाँपर अन्य बहुत-से सिद्ध लिङ्ग स्थित हैं। वह स्थान मेरे सभी स्थानोंसे बढ़कर है। कलियुगको भयानक जानकर मैंने इसे प्रकाशित नहीं किया॥ ५२॥

जो गति जितेन्द्रिय लोग कृत्तिवासमें प्राप्त करते हैं, वह गति यज्ञों, दानों, तीर्थों, अभिषेकों, घोर तपों तथा अन्य विविध शुभ धर्मोंके द्वारा भी लोग नहीं प्राप्त कर सकते हैं॥ ५३॥

देवदेवके दर्शनसे ब्राह्मणका वध करनेवाला भी [पापसे] मुक्त हो जाता है, [देवदेवका] स्पर्श तथा पूजन करनेसे व्यक्ति सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ ५४॥

जो लोग फाल्गुनमासके कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथिको एकाग्रचित्त होकर परम श्रद्धाके साथ सनातन देवका अर्चन करते हैं; पुष्पों, फलों, अनेकविध भक्ष्य पदार्थों, दुग्ध, मधु, जल तथा घृतसे शुभ लिङ्गदेवको तृप्त करते हैं और एक रात उपवास करके महान् भक्तिसे हुडुङ्कार, नमस्कार, नृत्य, गीत, मुखवाद्य तथा विविध स्तोत्र-मन्त्रोंसे शिवको तृप्त करते हैं, वे सदाशिवके अनामय परम स्थानको प्राप्त करते हैं॥ ५५—५८½॥

जो मनुष्य चैत्रमासकी चतुर्दशीको परमेश्वरका अर्चन करता है, वह कुबेरलोक प्राप्त करके यक्षराजकी

वैशाखं लोकमासाद्य तस्यैवानुचरो भवेत्।
ज्येष्ठे मासि चतुर्दश्यां योऽर्चयेच्छ्रद्धया हरम्॥ ६१

सोऽग्निलोकमवाप्नोति यावदाचन्द्रतारकम्।
चतुर्दश्यां शुचौ मासि योऽर्चयेत्तु सुरेश्वरम्॥ ६२

सूर्यस्य लोके सुसुखी क्रीडते यावदीप्सितम्।
श्रावणस्य चतुर्दश्यां कामलिङ्गं समर्चितम्॥ ६३

स याति वारुणं लोकं क्रीडते चाप्सरैः सह।
मासि भाद्रपदे युक्तमर्चयित्वा तु शङ्करम्॥ ६४

पुष्पैः फलैश्च विविधै रुद्रस्यैति सलोकताम्।
पितृपक्षे चतुर्दश्यां पूजयित्वा महेश्वरम्॥ ६५

प्राप्यते पितृलोकं तु क्रीडते पूजितस्तु तैः।
प्रबोधमासे देवेशमर्चयित्वा महेश्वरम्॥ ६६

स चन्द्रलोकमाप्नोति क्रीडते यावदीप्सितम्।
बहुले मार्गशीर्षस्य अर्चयित्वा पिनाकिनम्॥ ६७

विष्णुलोकमवाप्नोति क्रीडते कालमक्षयम्।
अर्चयित्वा तथा पुष्ये स्थाणुं तुष्टेन चेतसा॥ ६८

प्राप्नोति नैर्ऋतं स्थानं तेन वै सह मोदते।
माघे समर्चयित्वा वै पुष्पमूलफलैः शुभैः॥ ६९

प्राप्नोति शिवलोकं तु त्यक्त्वा संसारसागरम्।
कृत्तिवासेश्वरं देवमर्चयेत्तु प्रयत्नतः॥ ७०

अविमुक्ते च वस्तव्यं यदीच्छेन्मामकं पदम्॥ ७१

गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि
धन्याविमुक्ते तु नरा वसन्ति।
स्वर्गापवर्गस्य पदस्य लिङ्गं
ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः॥ ७२

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं पुण्यं काशिपुर्यां वरानने।
धन्वन्तरिः पुरा जातः काशिराजगृहे शुभे॥ ७३

भाँति क्रीड़ा करता है॥ ५९$^{1}/_{2}$॥

जो वैशाखमासकी चतुर्दशीके दिन संयत होकर शिवकी पूजा करता है, वह स्कन्दलोक प्राप्त करके उन्हींका अनुचर हो जाता है। जो ज्येष्ठमासमें चतुर्दशी तिथिको श्रद्धा-पूर्वक शिवका पूजन करता है, वह चन्द्र-तारोंकी स्थिति-पर्यन्त अग्निलोकमें वास करता है॥ ६०-६१$^{1}/_{2}$॥

जो आषाढ़ महीनेमें चतुर्दशी तिथिको सुरेश्वरका अर्चन करता है, वह सूर्यलोकमें इच्छित समयतक सुखी रहते हुए क्रीडा करता है। जो श्रावणमासकी चतुर्दशी तिथिको काम-लिङ्गका अर्चन करता है, वह वरुणलोकको जाता है और वहाँ अप्सराओंके साथ क्रीडा करता है॥ ६२-६३$^{1}/_{2}$॥

भाद्रपदमासमें भक्तिपूर्वक विविध पुष्पों तथा फलोंके द्वारा शंकरकी पूजा करके मनुष्य रुद्रका सालोक्य प्राप्त करता है। [आश्विनमासमें] पितृपक्षमें चतुर्दशी तिथिको महेश्वरका पूजन करके मनुष्य पितरोंका लोक प्राप्त करता है और पूजित होकर उनके साथ क्रीडा करता है॥ ६४-६५$^{1}/_{2}$॥

प्रबोध (कार्तिक)-मासमें देवेश महेश्वरकी पूजा करके वह चन्द्रलोक प्राप्त करता है और इच्छित समयतक वहाँ विहार करता है। मार्गशीर्षमासकी चतुर्दशी तिथिको पिनाकधारी शिवका अर्चन करके मनुष्य विष्णुलोक प्राप्त करता है और अक्षयकालतक वहाँ क्रीडा करता है॥ ६६-६७$^{1}/_{2}$॥

पौष महीनेमें प्रसन्न मनसे स्थाणु (शिव)-की पूजा करके मनुष्य निर्ऋतिलोक प्राप्त करता है और उनके साथ आनन्द करता है। माघमासमें शुभ पुष्प-मूल-फलोंके द्वारा शिवकी पूजा करके मनुष्य संसारसागरका त्यागकर शिवलोक प्राप्त करता है॥ ६८-६९$^{1}/_{2}$॥

यदि कोई मेरा लोक चाहता हो, तो उसे प्रयत्नपूर्वक कृत्तिवासेश्वरदेवकी पूजा करनी चाहिये और अविमुक्त [क्षेत्र]-में वास करना चाहिये॥ ७०-७१॥

सिद्धलोग यह गीत गाते हैं कि जो मनुष्य अविमुक्तमें वास करते हैं और स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले कृत्तिवासेश्वरलिङ्गकी शरण ग्रहण करते हैं, वे धन्य हैं॥ ७२॥

ईश्वर बोले—हे वरानने! काशीपुरीमें अन्य

तेन भद्रे तथा काले अहमाराधितः शुभे।
भृङ्गीशेश्वरनामानं लिङ्गं तत्र स्थितं मम॥ ७४

पश्चान्मुखः स्थितश्चाहं कूपस्तु मम चाग्रतः।
तिष्ठन्त्योषधयस्तत्र सर्वा ह्यमृतसम्भवाः॥ ७५

क्षिप्तास्तस्मिन् पुरा काले वैद्यराजेन सुन्दरि।
तेन तत्प्रोच्यते स्थानं वैद्यनाथं महेश्वरि॥ ७६

तस्मिन् कूपे तु ये देवि पानीयं पिबते नरः।
व्याधिभिः सम्प्रमुच्यन्ते वैद्यनाथप्रभावतः॥ ७७

कूपस्य चोत्तरे भागे हरिकेश्वरसंज्ञकम्।
रोगैश्चापि प्रमुच्यन्ते हरिकेश्वरदर्शनात्॥ ७८

तुङ्गेशस्य समीपे तु दक्षिणे वरवर्णिनि।
शैवं तडागमाख्यातं शिवेनाधिष्ठितं शुभम्॥ ७९

पश्चिमे तु तटे रम्ये स्थितोऽहं तत्र सुव्रते।
पश्चिमाभिमुखो भद्रे तस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः॥ ८०

शिवेश्वर इति ख्यातो भक्तानां वरदायकः।
शिवेश्वराद्दक्षिणतो नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ८१

पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं स्थापितं जमदग्निना।
जमदग्निलिङ्गात्पश्चिमतो नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ८२

भैरवेश्वरविख्यातं सुरासुरनमस्कृतम्।
तत्र दुर्गा स्थिता भद्रे ममापि हि भयङ्करा॥ ८३

नृत्यमाना तु सा देवी लिङ्गस्यैव समीपतः।
भैरवेशं तु तं दृष्ट्वा संसारे न पतेत्पुनः॥ ८४

तस्यैव भैरवेशस्य कूपस्तिष्ठति चोत्तरे।
तस्योपस्पर्शनं कृत्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ ८५

कूपस्य पश्चिमे भागे लिङ्गं तिष्ठति भामिनि।
शुकेश्वरमिति ख्यातं स्थापितं व्याससूनुना॥ ८६

तं दृष्ट्वा मानवो देवि वैराग्यमपि विन्दति।
तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे तडागं यत्र तिष्ठति॥ ८७

पुण्यप्रद आयतन भी हैं। पूर्वकालमें काशिराजके शुभ गृहमें धन्वन्तरि उत्पन्न हुए थे॥ ७३॥

हे भद्रे! उन्होंने शुभ कालमें मेरी आराधना की थी। वहाँपर मेरा भृंगीशेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। मैं वहाँ पश्चिमकी ओर मुख किये हुए स्थित हूँ और मेरे सामने एक कूप है। वहाँ अमृतसे उत्पन्न सभी औषधियाँ विद्यमान हैं॥ ७४-७५॥

हे सुन्दरि! पूर्वकालमें वैद्यराजके द्वारा औषधियाँ उस कूपमें डाली गयी थीं, इसीलिये हे महेश्वरि! उस स्थानको वैद्यनाथ कहा जाता है॥ ७६॥

हे देवि! जो मनुष्य उस कूपका जल पीते हैं, वे वैद्यनाथके प्रभावसे व्याधियोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ७७॥

[उस] कूपके उत्तरभागमें हरिकेश्वर नामक लिङ्ग है, हरिकेश्वरके भी दर्शनसे मनुष्य रोगोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ७८॥

हे वरवर्णिनि! दक्षिण दिशामें तुंगेश्वरके समीप शिवके द्वारा अधिष्ठित एक उत्तम शैव तडाग बताया गया है॥ ७९॥

हे सुव्रते! वहाँ रम्य पश्चिमी तटपर मैं स्थित हूँ। हे भद्रे! भक्तोंको वर प्रदान करनेवाला मैं उस स्थानमें पश्चिमाभिमुख होकर स्थित हूँ और शिवेश्वर—इस नामसे विख्यात हूँ। शिवेश्वरके दक्षिणमें [महर्षि] जमदग्निके द्वारा स्थापित एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। जमदग्निलिङ्गके पश्चिममें देवताओं तथा असुरोंसे नमस्कृत भैरवेश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग स्थित है॥ ८०—८२१/२॥

हे भद्रे! वहाँ मेरे लिङ्गके ही समीपमें नृत्य करती हुई वे भयंकर देवी दुर्गा स्थित हैं। उन भैरवेश्वरका दर्शन करके मनुष्य पुनः संसारमें नहीं आता है॥ ८३-८४॥

उन्हीं भैरवेश्वरके उत्तरमें एक कूप स्थित है, उसमें स्नान करके मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ ८५॥

हे भामिनि! कूपके पश्चिम भागमें व्यासपुत्रके द्वारा स्थापित शुकेश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य वैराग्य भी प्राप्त कर लेता है॥ ८६१/२॥

तत्र स्नात्वा वरारोहे कृतकृत्यो भवेन्नरः।
नैर्ऋते तु दिशाभागे शुकेशस्य तु सुन्दरि॥ ८८

स्थापितं मुखलिङ्गं तु व्यासेनापि महर्षिणा।
व्यासेश्वरं तु विख्यातमृषिसङ्घैस्तु वन्दितम्॥ ८९

व्यासकुण्डे नरः स्नात्वा अर्चयित्वा सुरान् पितॄन्।
अक्षयाँल्लभते लोकान् यत्र तत्राभिकाङ्क्षितान्॥ ९०

व्यासतीर्थसमीपे तु पश्चिमेन यशस्विनि।
घण्टाकर्णह्रदं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ ९१

स्नानं कृत्वा ह्रदे तस्मिन् व्यासस्यैव तु दर्शनात्।
यत्र तत्र मृतो वापि वाराणस्यां मृतो भवेत्॥ ९२

तत्र देवि तनुं त्यक्त्वा लभेद्गाणेश्वरीं गतिम्।
घण्टाकर्णसमीपे तु उत्तरेण यशस्विनि॥ ९३

पुण्यमप्सरसां ख्यातं पञ्चचूडाविनिर्मितम्।
पञ्चचूडाह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा चैव तमीश्वरम्॥ ९४

स्वर्गलोकं नरो याति पञ्चचूडाप्रियः सदा।
तस्य चोत्तरदेशे तु अशोकवनसंस्थितम्॥ ९५

अशोकवनमध्यस्थं तत्र कुण्डं शुभोदकम्।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा विलोकश्चैव जायते॥ ९६

विलोकाच्चोत्तरे भागे नाम्ना मन्दाकिनी शुभा।
स्वर्गलोके तु सा पुण्या किं पुनर्मानुषे शुभे॥ ९७

यत्र वै देवदेवस्य सान्निध्यं देवि सर्वदा।
लिङ्गं तत्र स्वयं भूतं क्षेत्रमध्ये तु सुन्दरि॥ ९८

ईश्वर उवाच

मन्दाकिनीजले स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम्।
एकविंशकुलोपेतो रुद्रलोके वसेच्चिरम्॥ ९९

एतत्किल सदा प्राहुः पितरः सपितामहाः।
योऽपि चास्मत्कुले जातो मन्दाकिन्या जलोद्गतः॥ १००

हे वरारोहे! वहाँ उसके उत्तरभागमें एक तडाग स्थित है, जहाँ स्नान करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ ८७१/२॥

हे सुन्दरि! शुकेश्वरके नैर्ऋत दिशाभागमें महर्षि व्यासके द्वारा मुखलिङ्ग स्थापित किया गया है, व्यासेश्वर नामसे विख्यात वह [लिङ्ग] ऋषियोंके द्वारा वन्दित है॥ ८८-८९॥

वहाँ व्यासकुण्डमें स्नान करके तथा देवताओं और पितरोंका अर्चन करके मनुष्य अभीष्ट अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है॥ ९०॥

हे यशस्विनि! व्यासतीर्थके समीप पश्चिममें समस्त सुख प्रदान करनेवाला घण्टाकर्ण नामक ह्रद विद्यमान है। उस ह्रदमें स्नान करके तथा व्यासका दर्शन करके मनुष्य जहाँ कहीं भी मरता है, वह मानो वाराणसीमें मृत्यु प्राप्त करता है। हे देवि! वहाँपर शरीरका त्याग करके मनुष्य गाणेश्वरीगति प्राप्त करता है॥ ९१-९२१/२॥

हे यशस्विनि! घण्टाकर्णके समीप उत्तरदिशामें पंचचूडाके द्वारा निर्मित अप्सराओंका पुण्यप्रद ह्रद बताया गया है, पंचचूडाह्रदमें स्नान करके तथा उन ईश्वरका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गलोक जाता है और सर्वदा पंचचूडाका प्रिय बना रहता है॥ ९३-९४१/२॥

उसके उत्तरभागमें अशोकवन स्थित है, वहाँपर अशोकवनके मध्यमें पवित्र जलवाला कुण्ड स्थित है। उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य [वहाँपर विद्यमान] विलोकतीर्थस्वरूप हो जाता है॥ ९५-९६॥

विलोकके उत्तरभागमें शुभ मन्दाकिनी विद्यमान है। हे देवि! स्वर्गलोकमें स्थित वह पुण्यमयी [मन्दाकिनी] नदी यदि इस शुभ मनुष्यलोकमें है, तो फिर कहना ही क्या, जहाँ सर्वदा देवदेव [शिवका] सान्निध्य रहता है। हे सुन्दरि! वहाँ क्षेत्रके मध्यमें लिङ्ग स्वयं आविर्भूत हुआ है॥ ९७-९८॥

ईश्वर बोले—मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके मध्यमेश्वरका दर्शनकर मनुष्य [अपने] इक्कीस कुलोंसहित दीर्घकालतक रुद्रलोकमें वास करता है॥ ९९॥

पितामहोंसहित पितृगणोंने यह सर्वदा कहा है कि

भोजयेच्च यतो विप्रान् यतीन् पाशुपतान् बुधः।
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥ १०१

पिण्डनिर्वापणं चैव सर्वं भवति चाक्षयम्।
क्षेत्रस्य चास्य सङ्क्षेपान्मया ते कथितं स्फुटम्॥ १०२

दक्षिणं भूमिभागं तु मध्यमेशस्य यद्भवेत्।
तत्र पूर्वामुखं लिङ्गं विश्वेदेवैः प्रतिष्ठितम्॥ १०३

पश्चान्मुखं तु देवेशं वीरभद्रप्रतिष्ठितम्।
पश्चान्मुखेन दृष्टेन वीरभद्रसलोकताम्॥ १०४

तयोस्तु दक्षिणे देवि भद्रकालीह्रदं स्मृतम्।
कुण्डस्य पश्चिमे तीरे शौनकेन प्रतिष्ठितम्॥ १०५

मतङ्गेश्वरनामानं लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ १०६
मतङ्गेश्वरकोणे तु वायव्ये तु यशस्विनि।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि नैरस्तत्र महात्मभिः॥ १०७

तस्यैव दक्षिणे भागे जयन्तेन प्रतिष्ठितम्।
देवराजस्य पुत्रेण आत्मनो जयमिच्छता॥ १०८

ब्रह्मतारेश्वरं चैवं तस्मिन् स्थाने सुरेश्वरि।
पितृभिः याज्ञवल्क्येन तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठितम्॥ १०९

तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धिकूटः प्रकीर्तितः।
सिद्धाः पाशुपतास्तत्र मम लिङ्गार्चने रताः॥ ११०

तेषां वै तत्र कूटोऽयं सिद्धकूटः स सिध्यते।
तत्र ध्यानरताः केचिज्जपं कुर्वन्ति चापरे॥ १११

स्वाध्यायमन्ये कुर्वन्ति तपः कुर्वन्ति चापरे।
आकाशशयनं केचित्केचिद्भावं समाश्रिताः॥ ११२

अधोमुखास्तथैवान्ये धूमपेयास्तथापरे।
प्रदक्षिणान्ये कुर्वन्ति काष्ठमौनं तथापरे॥ ११३

कुर्वन्ति पुष्पाहरणं गड्डूकानां तथा परे।
तैः सर्वैः स्थापितं लिङ्गमर्चापूजनतत्परैः॥ ११४

हमारे कुलमें उत्पन्न जो कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके पाशुपत विप्रों तथा यतियोंको भोजन कराता है, उसका स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, पिण्डनिर्वापण—यह सब अक्षय हो जाता है॥ १००-१०१$^{1}/_{2}$॥

मैंने इस क्षेत्रका माहात्म्य आपसे संक्षेपमें बता दिया। मध्यमेश्वरके दक्षिणमें जो भूमिभाग है, वहाँ विश्वेदेवोंके द्वारा स्थापित एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग है और वीरभद्रके द्वारा स्थापित पश्चिमाभिमुख लिङ्ग भी है, उस पश्चिमाभिमुख देवेशके दर्शनसे मनुष्य वीरभद्रका सालोक्य प्राप्त करता है॥ १०२—१०४॥

हे देवि! उन दोनोंके दक्षिणमें भद्रकालीह्रद बताया गया है। वहींपर उस कुण्डके पश्चिमी तटपर शौनकके द्वारा एक लिङ्ग स्थापित किया गया है। मतंगेश्वर नामक लिङ्ग भी वहींपर स्थित है, पूर्वकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला है॥ १०५-१०६॥

हे यशस्विनि! वहाँ मतंगेश्वरके वायव्यकोणमें महात्मा पुरुषोंके द्वारा [अनेक] लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। उसीके दक्षिणभागमें अपनी विजयकी कामना करनेवाले देवराजपुत्र जयन्तके द्वारा [एक] लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ १०७-१०८॥

हे सुरेश्वरि! उस स्थानमें ब्रह्मतारेश्वर [लिङ्ग] विद्यमान है, वह लिङ्ग पितरों तथा याज्ञवल्क्यके द्वारा स्थापित किया गया है॥ १०९॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें सिद्धिकूट बताया गया है, वहाँपर सिद्धपाशुपत मेरे लिङ्गके अर्चनमें संलग्न रहते हैं॥ ११०॥

वहाँ उनका जो कूट है, वह सिद्धकूट कहा जाता है। वहाँपर कुछ लोग ध्यानपरायण रहते हैं, दूसरे लोग जप करते हैं, अन्य लोग स्वाध्याय करते हैं, कुछ लोग तप करते हैं, कुछ लोग आकाशशयन करते हैं, कुछ लोग भक्तिभावमें लीन रहते हैं, कुछ लोग अधोमुख होकर स्थित रहते हैं, कुछ लोग धूम ग्रहण करते हुए तपमें रत रहते हैं, कुछ लोग प्रदक्षिणा करते रहते हैं, कुछ लोग काष्ठकी भाँति मौन रहते हैं और कुछ लोग गडूकके पुष्पोंको एकत्र करनेमें संलग्न रहते हैं। अर्चन-पूजनमें तत्पर उन सभीके द्वारा वहाँ लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ १११—११४॥

तेषां तत्र तदा भक्तिं ज्ञात्वा देवे हि सुव्रते।
सान्निध्यं कृतवानस्मिंस्तदनुग्रहकाम्यया॥ ११५

हे सुव्रते! उस समय वहाँपर लिङ्गके प्रति उन सबकी भक्ति जानकर मैंने अनुग्रहकी इच्छासे उस लिङ्गमें वास किया॥ ११५॥

सिद्धेश्वरं तु विख्यातं सर्वपापहरं शुभम्।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं सिद्धकूटे व्यवस्थितम्॥ ११६

सिद्धेश्वर नामसे विख्यात तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला वह शुभ लिङ्ग पूर्वकी ओर मुख किये सिद्धकूटमें स्थित है॥ ११६॥

मानवानां हितार्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्।
देवस्य पश्चिमे भागे वापी तिष्ठति सुन्दरि॥ ११७

तत्र वापीजले स्नात्वा दृष्ट्वा सिद्धेश्वरं नरः।
अस्मिन् क्षेत्रे तु निर्माल्यं पापं सङ्क्रमते तु यत्॥ ११८

तत् सर्वं विलयं याति सिद्धेश्वरस्य दर्शनात्॥ ११९

मैं मनुष्योंके कल्याणके लिये उस स्थानपर स्थित हूँ। हे सुन्दरि! उस लिङ्गके पश्चिमभागमें [एक] वापी विद्यमान है, वहाँ वापीके जलमें स्नान करके तथा सिद्धेश्वरका दर्शन करके मनुष्य इस क्षेत्रमें पापरहित हो जाता है। उसे जो भी पाप लिप्त किये होता है, वह सब सिद्धेश्वरके दर्शनसे विनष्ट हो जाता है॥ ११७—११९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

व्याघ्रेश्वर, दण्डीश्वर, जैगीषव्येश्वर तथा शातातपेश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

सिद्धकूटस्य पूर्वेण देवं पश्चान्मुखं स्थितम्।
व्याघ्रेश्वरेति विख्यातं सर्वदेवैः स्तुतं शुभे॥ १

ईश्वर बोले—हे शुभे! सिद्धकूटके पूर्वमें व्याघ्रेश्वर नामसे विख्यात एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह सभी देवताओंके द्वारा स्तुत है॥ १॥

तेन दृष्टेन लभते उत्तमं पदमव्ययम्।
व्याघ्रेश्वराद्दक्षिणे च स्वयम्भूस्तत्र तिष्ठति॥ २

दिव्यं लिङ्गं तु तत्रस्थं देवानामपि दुर्लभम्।
रहस्यं सर्वदेवानां भूमिं भित्त्वा तु चोत्थितम्॥ ३

तेन लिङ्गेन दृष्टेन पूजितेन स्तुतेन च।
कृतकृत्यो भवेद्देवि संसारे न पुनर्विशेत्॥ ४

उसके दर्शनसे मनुष्य उत्तम अव्यय (शाश्वत) पद प्राप्त करता है। वहाँ व्याघ्रेश्वरके दक्षिणमें स्वयम्भू लिङ्ग स्थित है। वहाँपर विद्यमान वह दिव्य लिङ्ग देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, देवताओंके लिये रहस्यमय वह लिङ्ग भूमिका भेदन करके प्रकट हुआ है। हे देवि! उस लिङ्गके दर्शन, पूजन तथा स्तवनसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और संसारमें पुनः जन्म नहीं लेता है॥ २—४॥

पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं ज्येष्ठस्थानमिदं शुभम्।
मानवानां हितार्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्॥ ५

वह लिङ्ग पूर्वाभिमुख है, यह शुभ ज्येष्ठस्थान कहा जाता है। मैं मनुष्योंके हितके लिये उस स्थानमें स्थित हूँ॥ ५॥

अस्याग्रे देवदेवेशि मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
पश्चान्मुखं तु तं देवि पञ्चचूडा शुभेक्षणा॥ ६

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु नाम्ना प्रहसितेश्वरम्।
तं दृष्ट्वा लभते देवि आनन्दं ब्रह्मणः पदम्॥ ७

तस्योत्तरे तु देवेशि पुण्यं लिङ्गं त्वया कृतम्।
निवासेति च विख्यातं सर्वेषामेव योगिनाम्॥ ८

तेन दृष्टेन देवेशि योगं विन्दति शाङ्करम्।
चतुःसमुद्रविख्यातः कूपस्तिष्ठति सुन्दरि॥ ९

चतुःसमुद्रस्नानेन यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं सकलं तस्य उदकस्पर्शनाच्छुभे॥ १०

तत्रैव त्वं महादेवि रममाणा मया सह।
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति भक्तियुक्ताश्च मानवाः॥ ११

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १२

ईश्वर उवाच

कूपस्य उत्तरे देवि व्याघ्रेशस्य तु दक्षिणे।
तिष्ठते तत्र वै लिङ्गं पूर्वामुखं च सुन्दरि॥ १३

दण्डीश्वरमिति ख्यातं वरदं सर्वदेहिनाम्।
तेन दृष्टेन लभ्येत ऐश्वरं पदमव्ययम्॥ १४

तस्योत्तरे तडागं च देवि सर्वत्र विश्रुतम्।
सन्ध्याप्रणामकुपिता यदा तस्मिन् सुरेश्वरि॥ १५

बहुरूपं समास्थाय देवदेवः स्वयं हरः।
दण्डकश्च तदा क्षिप्तो देवाग्रे स प्रभाकरः॥ १६

तेन तत्र कृतं दिव्यं तडागं लोकविश्रुतम्।
क्रोधेन प्रस्थिता देवि तुहिनाचलसम्मुखम्॥ १७

तावदस्य तदग्रे वै तडागं महदद्भुतम्।
तं दृष्ट्वा तु तदा देवि निवृत्ता पुनरेव वा॥ १८

हे देवदेवेशि! इसके आगे मुखलिङ्ग विराजमान है। हे देवि! शुभ नेत्रोंवाली पंचचूडाने पश्चिमकी ओर मुखवाले उस लिङ्गको स्थापित किया है॥ ६॥

उसके दक्षिण भागमें प्रहसितेश्वर नामक लिङ्ग है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य आनन्दप्रद ब्रह्मलोक प्राप्त करता है॥ ७॥

हे देवेशि! उसके उत्तरमें आपके द्वारा निवास नामसे विख्यात सभी योगियोंके लिये एक पुण्यप्रद लिङ्ग स्थापित किया गया है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य शांकरयोग प्राप्त करता है॥ ८ $^1/_2$ ॥

हे सुन्दरि! वहाँ चतुःसमुद्र नामसे प्रसिद्ध एक कूप स्थित है। हे शुभे! मनुष्य चारों समुद्रोंमें स्नान करनेसे जो फल पाता है, वह सम्पूर्ण फल उस [चतुःसमुद्रकूप]-के जलके स्पर्श करनेसे उसे प्राप्त होता है॥ ९—१०॥

हे महादेवि! आप वहींपर मेरे साथ विहार करती हैं। जो मनुष्य भक्तिसे युक्त होकर आपकी पूजा करेंगे, करोड़ों कल्पोंमें भी उनका पुनर्जन्म नहीं होगा॥ ११-१२॥

ईश्वर बोले—हे देवि! हे सुन्दरि! वहाँपर कूपके उत्तरमें तथा व्याघ्रेशके दक्षिणमें एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वह दण्डीश्वर नामसे विख्यात है तथा सभी प्राणियोंको वर देनेवाला है, उसके दर्शनसे ईश्वरका शाश्वत पद प्राप्त होता है॥ १३-१४॥

हे देवि! उसके उत्तरमें सर्वत्र प्रसिद्ध एक तडाग है। हे सुरेश्वरि! सन्ध्याकालमें प्रणाम न करनेके कारण जब तुम कुपित हुई, तब देवाधिदेवने स्वयं अनेक रूप धारण करके देवताओंके सम्मुख ज्योतिर्मय दण्डको फेंका, उसने वहाँ लोकप्रसिद्ध तडाग बना दिया। हे देवि! जब तुमने क्रोधपूर्वक हिमालयके सम्मुख प्रस्थान किया, उसी समय उसके आगे अत्यन्त अद्भुत तडाग मिला। हे देवि! उसे देखकर तुम पुनः वापस आ गयी और हे देवेशि! हे भामिनि! उसके बाद घरमें प्रवेश करके वहींपर स्थित हो गयी। देवाधिदेवके दण्डके वहाँ गिरनेपर महान् सरोवर हो गया। अतः जो पुराणवेत्ता

वेश्म प्रविश्य देवेशि स्थिता तत्रैव भामिनि।
दण्डेन देवदेवस्य स्थितेन सुमहत्सरः॥ १९

दण्डखातमिति प्राहुर्ये पुराणविदो जनाः।
तस्मात्स्नानं तु कर्तव्यं तत्रैव श्रेय इच्छया॥ २०

तत्र स्नाने कृते देवि कृतकृत्यो भवेन्नरः।
दण्डखाते नरः स्नात्वा तर्पयित्वा स्वकान् पितॄन्॥ २१

नरकस्थास्तु ये देवि पितृलोके वसन्ति ते।
पिशाचत्वं गता ये च नराः पापेन कर्मणा॥ २२

तेषां पिण्डप्रदानेन देहस्योद्धरणं स्मृतम्।
दण्डखाते नरः स्नात्वा किं भूयः परिशोचति॥ २३

यस्य स्मरणमात्रेण पापसङ्घातपञ्जरम्।
नश्यते शतधा देवि दण्डखातस्य दर्शनात्॥ २४

तस्य दण्डस्य माहात्म्यं पुण्यं शृणु महायशः।
सूर्योपरागे देवेशि नरा आयान्ति सुव्रते॥ २५

कुरुक्षेत्रं महत्पुण्यं सर्वदेवनमस्कृतम्।
निवृत्ते ग्रहणे देवि कुरुक्षेत्रात्परं पदम्॥ २६

दण्डखातं समायान्ति आत्मशुद्ध्यर्थकारणम्।
दर्शनात्तस्य खातस्य कृतकृत्योऽभिजायते॥ २७

अन्यदायतनं तत्र मम देवि महेश्वरि।
जैगीषव्येश्वरं नाम स्थापितं सुमहात्मना॥ २८

जैगीषव्यगुहा तस्मिन् देवदेवस्य सन्निधौ।
त्रिकालमर्चयँल्लिङ्गं भक्त्या तद्भावितात्मना॥ २९

एवमाराधितो देवि जैगीषव्येण धीमता।
तस्य पृष्टश्चाहं देवि सर्वान् कामान् प्रदत्तवान्।
तस्मात्तु सुकृतं लिङ्गं पूजयिष्यन्ति ये नराः॥ ३०

ज्ञानं तेषां ध्रुवं देवि अचिराज्जायते भुवि।
त्रिरात्रं तत्र कृत्वा वै यो नरः पूजयिष्यति॥ ३१

गुह्यं प्रविश्यते चैव ज्ञानयुक्तो भवेन्नरः।
तस्य वै पश्चिमे भागे सिद्धकूपस्तु दक्षिणे॥ ३२

लोग हैं, वे उसे 'दण्डखात'—इस नामसे पुकारने लगे हैं। अतः मनुष्यको [अपने] कल्याणकी कामनासे वहाँपर स्नान करना चाहिये॥ १५—२०॥

हे देवि! वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। [हे देवि!] दण्डखातमें स्नान करके मनुष्यको अपने पितरोंका तर्पण करना चाहिये। हे देवि! जो [पितर] नरकमें स्थित हैं, वे [तर्पणके प्रभावसे] पितृलोकमें वास करते हैं। अपने पापकर्मसे जो [पितृगण] पिशाचत्वको प्राप्त हुए हैं, वहाँ पिण्डदान करनेसे उनके देहका उद्धार कहा गया है॥ २१-२२½॥

दण्डखातमें स्नान करके मनुष्य भला कैसे सन्तप्त रह सकता है? हे देवि! जिस दण्डखातके स्मरणमात्रसे तथा दर्शनसे पापसमूहका पंजर सैकड़ों भागोंमें होकर विनष्ट हो जाता है, उस दण्डखातके माहात्म्य तथा पुण्यप्रद महायशका श्रवण कीजिये॥ २३-२४½॥

हे देवेशि! हे सुव्रते! सूर्यग्रहणके अवसरपर मनुष्य महापुण्यप्रद तथा सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत कुरुक्षेत्रमें आते हैं और हे देवि! ग्रहणके समाप्त होनेपर वे कुरुक्षेत्रसे परम पदस्वरूप तथा आत्मशुद्धिके कारणभूत दण्डखातमें आते हैं, उस दण्डखातके दर्शनसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ २५—२७॥

हे देवि! हे महेश्वरि! वहाँ परम महात्मा [जैगीषव्य]-के द्वारा स्थापित किया गया जैगीषव्येश्वर नामक अन्य आयतन भी है। उसमें जैगीषव्यकी गुहा स्थित है, वहाँ देवदेवकी सन्निधिमें उन्होंने भक्तिपूर्वक शिवमें आसक्त चित्तसे लिङ्गका त्रिकाल अर्चन किया था॥ २८-२९॥

हे देवि! इस प्रकार बुद्धिमान् जैगीषव्यके द्वारा मेरी आराधना की गयी, तब हे देवि! उनके माँगनेपर मैंने उनकी सभी कामनाओंको पूर्ण किया। इसलिये हे देवि! पृथ्वीलोकमें जो मनुष्य इस पुण्यप्रद लिङ्गकी पूजा करते हैं, उन्हें निश्चित रूपसे शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य वहाँ तीन रात्रि [उपवासपूर्वक] व्यतीत करके लिङ्गका पूजन करता है, वह गूढतत्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है और ज्ञानसम्पन्न हो जाता है॥ ३०-३१½॥

पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं देवलेन प्रतिष्ठितम्।
तेन दृष्टेन देवेशि ज्ञानवान् जायते नरः॥ ३३

तस्यैव च समीपस्थं शतकालप्रतिष्ठितम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे नातिदूरे तपस्विनि॥ ३४

मुखलिङ्गं तु तद्भद्रे पश्चिमाभिमुखं शुभे।
शातातपेश्वरं नाम स्थापितं च महर्षिणा॥ ३५

तेन दृष्टेन लभते गतिमिष्टाञ्च शाश्वतीम्।
तस्य पश्चिमदिग्भागे महालिङ्गं च तिष्ठति॥ ३६

हेतुकेश्वरनामानं सर्वसिद्धिफलप्रदम्।
तस्यैव दक्षिणे भागे मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ ३७

कणादेश्वरनामानं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्।
सिद्धस्तत्र महाभागे कणादस्तु ऋषिः पुरा॥ ३८

कूपस्तत्र समीपस्थः पुण्यदः सर्वदेहिनाम्।
कणादेशाद्दक्षिणेन अन्यदायतनं शुभम्॥ ३९

पश्चान्मुखन्तु भूतीशं सर्वपापप्रणाशनम्।
तस्यैव पश्चिमे भागे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४०

चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गमाषाढं नाम विश्रुतम्।
अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि महान्ति च॥ ४१

तेषां पूर्वेण लिङ्गं तु दैत्येन स्थापितं पुरा।
तेन दृष्टेन देवेशि पुत्रवान् जायते नरः॥ ४२

भारभूतेश्वरं देवं तत्र दक्षिणतः स्थितम्।
पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं भारभूतेश्वरं प्रिये॥ ४३

व्यासेश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
पराशरेण मुनिना स्थापितं मम भक्तितः॥ ४४

पश्चान्मुखं तु तद्देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
अत्रिणा स्थापितं भद्रे मम भक्तिपरेण च॥ ४५

उसके पश्चिमभागमें एक सिद्धकूप है। उसके दक्षिणमें [महर्षि] देवलके द्वारा स्थापित एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य ज्ञानवान् हो जाता है॥ ३२-३३॥

हे तपस्विनि! उसके दक्षिण दिशाभागमें अधिक दूरीपर नहीं, अपितु उसके समीपमें ही शतकालके द्वारा स्थापित एक लिङ्ग है॥ ३४॥

हे भद्रे! वह मुखलिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है। हे शुभे! शातातपेश्वर नामक वह लिङ्ग महर्षि शातातपके द्वारा स्थापित किया गया है, उसके दर्शनसे मनुष्य वांछित तथा शाश्वत गति प्राप्त करता है। उसके पश्चिम दिशाभागमें सभी सिद्धियोंका फल प्रदान करनेवाला हेतुकेश्वर नामक महालिङ्ग स्थित है। उसीके दक्षिणभागमें मुखलिङ्ग स्थित है॥ ३५—३७॥

कणादेश्वर नामक वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुख किये स्थित है। हे महाभागे! पूर्वकालमें ऋषि कणाद वहाँपर सिद्धिको प्राप्त हुए थे॥ ३८॥

वहाँ समीपमें ही सभी प्राणियोंको पुण्य प्रदान करनेवाला कूप विद्यमान है। कणादेश्वरके दक्षिणमें दूसरा शुभ आयतन है, वह पश्चिमकी ओर मुखवाला तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। उसीके पश्चिम भागमें एक पश्चिमाभिमुख मुखलिङ्ग स्थित है, वह चतुर्मुखलिङ्ग आषाढ नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ अन्य महालिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं॥ ३९—४१॥

उनके पूर्वमें प्राचीन कालमें [एक] दैत्यके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है॥ ४२॥

उसके दक्षिणमें भारभूतेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे प्रिये! वह भारभूतेश्वरलिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है॥ ४३॥

व्यासेश्वरके पूर्वमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसे पराशरमुनिने मेरी भक्तिसे स्थापित किया है॥ ४४॥

हे देवि! वहाँ पश्चिमकी ओर मुखवाला एक मुखलिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! मेरी भक्तिसे युक्त मुनि

पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वशास्त्रप्रदायकम्।
व्यासेश्वरस्य पूर्वेण द्वौ लिङ्गौ तत्र सुव्रते॥ ४६

स्थापितौ देवदेवेशि शङ्खेन लिखितेन च।
तौ दृष्ट्वा मानवो भद्रे ऋषिलोकमवाप्नुयात्॥ ४७

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं गुह्यं यशस्विनि।
लिङ्गं विश्वेश्वरं नाम सर्वदेवैस्तु वन्दितम्॥ ४८

तेन दृष्टेन लभ्येत व्रतात्पाशुपतात्फलम्।
पूर्वोत्तरदिशाभागे तस्य देवस्य सुन्दरि॥ ४९

अवधूतं महत्तीर्थं सर्वपापापनुत्तमम्।
तस्य पूर्वेण संल्लग्नं नाम्ना पशुपतीश्वरम्॥ ५०

तस्य दर्शनमात्रेण पशुयोनिं न गच्छति।
चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ ५१

तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गं पञ्चमुखं स्थितम्।
ऋषिणा स्थापितं भद्रे गोभिलेन महात्मना॥ ५२

तं दृष्ट्वा मानवो देवि ऋषिलोकं स गच्छति।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ५३

विद्याधराधिपतिना कृतं जीमूतवाहिना॥ ५४

अत्रिके द्वारा वह लिङ्ग स्थापित किया गया है। पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग सभी शास्त्रोंका ज्ञान देनेवाला है॥ ४५½॥

हे सुव्रते! हे देवदेवेशि! व्यासेश्वरके पूर्वमें वहाँ शंख तथा लिखित [मुनिद्वय]-के द्वारा दो लिङ्ग स्थापित किये गये हैं, हे भद्रे! उन दोनोंका दर्शन करके मनुष्य ऋषिलोक प्राप्त करता है॥ ४६-४७॥

हे यशस्विनि! देवदेवका अन्य गुह्य स्थान भी है, विश्वेश्वर नामक वह लिङ्ग सभी देवताओंद्वारा वन्दित है। उसके दर्शनसे मनुष्य पाशुपतव्रतसे होनेवाला फल प्राप्त करता है॥ ४८½॥

हे सुन्दरि! उस लिङ्गके पूर्वोत्तर दिशाभागमें सभी पापोंका नाश करनेवाला अवधूत नामक उत्तम महातीर्थ विद्यमान है। उसके पूर्वमें समीपमें ही पशुपतीश्वर नामक लिङ्ग है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पशुयोनिमें नहीं जाता है। वह लिङ्ग चतुर्मुख है तथा पश्चिमकी ओर मुख किये स्थित है॥ ४९—५१॥

हे भद्रे! उसके दक्षिण दिशाभागमें पंचमुख लिङ्ग स्थित है, महान् आत्मावाले ऋषि गोभिलने उसे स्थापित किया है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ऋषिलोकको जाता है। हे देवि! उसीके पश्चिममें विद्याधरोंके अधिपति जीमूतवाहीके द्वारा स्थापित किया गया पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है॥ ५२—५४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

गभस्तीश्वर तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका माहात्म्य एवं कलशेश्वरलिङ्गकी उत्पत्ति-कथा

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं देवि वाराणस्यां मम प्रिये।
गभस्तीश्वरनामानं लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १
सूर्येण स्थापितं भद्रे मम भक्तिपरेण वै।
तस्मिन् ममापि सान्निध्यं नित्यमेव यशस्विनि॥ २

ईश्वर बोले—हे प्रिये! वाराणसीमें मेरा दूसरा आयतन भी है। गभस्तीश्वर नामक वह लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है, हे भद्रे! मेरी भक्तिसे युक्त होकर सूर्यने उसे स्थापित किया है। हे यशस्विनि! उसमें भी सर्वदा मेरा सान्निध्य रहता है॥ १-२॥

ऐशानीं मूर्तिमास्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि ऐशानं लोकमाप्नुयात्॥ ३

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु दधिकर्णह्रदं स्थितम्।
उत्तरे कूपमेवं तु तस्य नामस्य सुन्दरि॥ ४

दधिकर्णेश्वरं देवं मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
पूर्वामुखं तु देवेशि गभस्तीशस्य चोत्तरे॥ ५

दक्षिणेन गभस्तीशाद्वाराणस्यां तु सुव्रते।
मानवानां हितार्थाय त्वं च तत्र व्यवस्थिता॥ ६

आराधयन्ति देवि त्वामुत्तराभिमुखीं स्थिताम्।
ये च त्वा पूजयिष्यन्ति तस्मिन् स्थाने स्थितो ह्यहम्॥ ७

तेषां त्वं विविधाँल्लोकान् सम्प्रदास्यसि मोदते।
जागरं ये प्रकुर्वन्ति तवाग्रे दीपधारिणः॥ ८

तेषां त्वमक्षयाँल्लोकान् वितरिष्यसि भामिनि।
आलयं ये प्रकुर्वन्ति तवार्थे वरवर्णिनि॥ ९

तेषां त्वमक्षयाँल्लोकान् प्रयच्छसि न संशयम्।
आलयं ये प्रकुर्वन्ति भूमिं सम्मार्जयन्ति च॥ १०

तेषामष्टसहस्रस्य सुवर्णस्य फलं लभेत्।
त्वामुद्दिश्य तु यो देवि ब्राह्मणान् ब्राह्मणीश्च ह॥ ११

भोजयिष्यति यो देवि तस्य पुण्यफलं शृणु।
तव लोके वसेत्कल्पमिहैवागच्छते पुनः॥ १२

नरो वा यदि वा नारी सर्वभोगसमन्वितौ।
धनधान्यसमायुक्तौ जायेते च महाकुले॥ १३

सुभगौ दर्शनीयौ च रूपयौवनदर्पितौ।
भवेतामीदृशौ देवि सर्वसौखस्य भाजने॥ १४

मानुषं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम्।
येन दृष्टासि सुश्रोणि तस्य जन्मभयं कुतः॥ १५

मायापुर्यां तु ललितां दृष्ट्वा यल्लभते फलम्।
तत्फलं तस्य देवेशि यस्त्वां तत्र निरीक्षयेत्॥ १६

पृथ्वीं प्रदक्षिणं कृत्वा यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं ललितायां च वाराणस्यां न संशयः॥ १७

ईशानका स्वरूप धारण करके मैं उस स्थानमें स्थित हूँ, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ईशानका लोक प्राप्त करता है॥ ३॥

उसके दक्षिणभागमें दधिकर्णह्रद स्थित है। हे सुन्दरि! उत्तरमें उसीके नामका कूप विद्यमान है। हे देवेशि! गभस्तीश्वरके उत्तरमें पूर्वकी ओर मुखवाला दधिकर्णेश्वर नामक मुखलिङ्ग स्थित है॥ ४-५॥

हे सुव्रते! वाराणसीमें गभस्तीशके दक्षिणमें मानवोंके कल्याणके लिये [स्वयं] आप विराजमान हैं और उस स्थानमें मैं भी स्थित हूँ। हे देवि! जो लोग वहाँ उत्तरकी ओर मुख करके विराजमान आपकी आराधना करते हैं तथा आपकी पूजा करते हैं, उन्हें प्रसन्न होकर आप विविध लोक प्रदान करती हैं॥ ६-७$^1/_2$॥

हे भामिनि! आपके सामने दीप धारण किये हुए जो लोग जागरण करते हैं, उन्हें आप अक्षय लोक प्रदान करती हैं। हे वरवर्णिनि! जो लोग आपके लिये आलयका निर्माण करते हैं, उन्हें आप अक्षय लोक प्रदान करती हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ८-९$^1/_2$॥

जो लोग आलयका निर्माण करते हैं तथा वहाँकी भूमिका सम्मार्जन करते हैं, उन्हें आठ हजार स्वर्णमुद्राकी प्राप्ति होती है। हे देवि! आपको उद्देश्य करके जो ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणियोंको भोजन कराता है, उसके पुण्यफलको सुनिये—वह कल्पपर्यन्त आपके लोकमें वास करता है, इसके बाद इस लोकमें आता है! पुरुष हो अथवा स्त्री—वे सभी प्रकारके भोगोंसे युक्त तथा धनधान्यसे समन्वित रहते हैं और श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होते हैं। हे देवि! वे सौभाग्यशाली, दर्शनीय, रूपयौवनसे सम्पन्न तथा सभी प्रकारके सुखोंके भाजन होते हैं॥ १०—१४॥

हे सुश्रोणि! विद्युत्-सम्पाततुल्य चंचल दुर्लभ मनुष्यशरीर प्राप्त करके जिसने आपका दर्शन कर लिया, उसे जन्मका भय कहाँसे हो सकता है? मायापुरीमें ललिता [देवी]-का दर्शन करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, हे देवेशि! यदि वह यहाँपर आपका दर्शन करे, तो उसे वही फल प्राप्त हो जाता है॥ १५-१६॥

पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह वाराणसीमें ललिताकी प्रदक्षिणासे प्राप्त कर

तेन ते नाम विख्यातं तथा मुखनिरीक्षिणी।
मुखप्रेक्षणिकां दृष्ट्वा सौभाग्यं चोत्तमं लभेत्॥ १८

माघे मासि चतुर्थ्यां तु तस्मिन् काल उपोषितः।
अर्चयित्वा तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत्॥ १९

तस्यर्द्धिमत् कुलं देवि त्रैलोक्ये याति दुर्लभम्।
मुखप्रेक्षा चोत्तरतो द्वौ लिङ्गौ तत्र विश्रुतौ॥ २०

पश्चान्मुखौ तु तौ देवि वृत्रत्वाष्ट्रेश्वरावुभौ।
काञ्चनीं पृथिवीं दत्त्वा यत्पुण्यं लभते नरः॥ २१

सुवर्णस्य च यत्पुण्यं लिङ्गयोर्दर्शनेन तत्।
त्रिरात्रं यः प्रकुरुते तत्रैव वरवर्णिनि॥ २२

गौरीलोकोऽक्षयस्तस्य पुनरावृत्तिदुर्लभः।
तस्माद्यत्नः सदा कार्यः सर्वदर्शनकाङ्क्षया॥ २३

ललितायाश्चोत्तरेण चर्चिकाधिष्ठिता शुभा।
मानवानां हितार्थाय वरदा सर्वदेहिनाम्॥ २४

चर्चिकायास्तथैवाग्रे तिष्ठते लिङ्गमुत्तमम्।
पूर्वामुखं तु तद्देवि रेवन्तेन प्रतिष्ठितम्॥ २५

तस्याग्रतो वरारोहे लिङ्गं पञ्चनदीश्वरम्।
पश्चान्मुखं तु तद्देवि सर्वस्नानफलप्रदम्॥ २६

ललितायाश्च संलग्नं पूर्वे कूपस्तु तिष्ठति।
तस्मिन् कूपे जलं स्पृष्ट्वा अतिरात्रफलं लभेत्॥ २७

ततो दक्षिणतो देवि तीर्थं पञ्चनदं स्मृतम्।
नरः पञ्चनदे स्नात्वा दृष्ट्वा लिङ्गं गभस्तिनः॥ २८

अनन्तं फलमाप्नोति यत्र तत्राभिजायते।
उपमन्युश्च सुश्रोणि लिङ्गं स्थापितवांस्तथा॥ २९

मुखानि तस्य तिष्ठन्ति तस्मिँल्लिङ्गे यशस्विनि।
तच्च पश्चान्मुखं देवि ललितादक्षिणेन तु॥ ३०

लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १७॥

अतः आपका नाम मुखनिरीक्षिणी विख्यात हो गया, मुखप्रेक्षिणीका दर्शन करके मनुष्य उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है॥ १८॥

हे देवि! माघमासमें चतुर्थी तिथिमें उस समय उपवास करके तथा पूजन करके जो वहाँपर जागरण करता है, हे देवि! वह तीनों लोकोंमें समृद्धिशाली तथा दुर्लभ कुलमें जन्म लेता है॥ १९ १/२॥

मुखप्रेक्षाके उत्तरदिशामें दो प्रसिद्ध लिङ्ग हैं, हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाले वे दोनों लिङ्ग वृत्रेश्वर तथा त्वाष्ट्रेश्वर नामवाले हैं। सुवर्णमयी भूमिका दान करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है और सुवर्णके दानका जो पुण्य होता है, वह पुण्यफल उन दोनोंके दर्शनसे प्राप्त कर लेता है। हे वरवर्णिनि! जो वहाँपर तीन रात व्यतीत करता है, उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति न करानेवाले अक्षय गौरीलोककी प्राप्ति होती है। इसलिये इन सबके दर्शनकी अभिलाषाके लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये॥ २०—२३॥

ललिताके उत्तरमें मनुष्योंके कल्याणके लिये सभी प्राणियोंको वर देनेवाली शुभ चर्चिका [देवी] विराजमान हैं। इसी प्रकार चर्चिकाके आगे एक उत्तम लिङ्ग स्थित है, हे देवि! पूर्वकी ओर मुखवाला वह [लिङ्ग] रेवन्तके द्वारा स्थापित किया गया है॥ २४-२५॥

हे वरारोहे! उसके आगे पंचनदीश्वर नामक लिङ्ग है। हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाला वह [लिङ्ग] समस्त स्नानोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ २६॥

ललिताके समीपमें पूर्वकी ओर एक कूप स्थित है, उस कूपके जलका स्पर्श करके मनुष्य अतिरात्रयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ २७॥

हे देवि! उसके दक्षिणमें पंचनद [नामक] तीर्थ बताया गया है, [उस] पंचनदमें स्नान करके तथा गभस्तीश्वरका दर्शन करके मनुष्य जहाँ-कहीं भी हो, अनन्त फल प्राप्त करता है॥ २८ १/२॥

हे सुश्रोणि! उपमन्युने एक लिङ्ग स्थापित किया है, हे यशस्विनि! उस लिङ्गमें उसके मुख स्थित हैं। हे देवि! पश्चिमाभिमुख वह लिङ्ग ललिताके दक्षिणमें

तेन दृष्टेन देवेशि न पुनर्जन्मभाग्भवेत्।
तस्यैव तु समीपे तु पश्चिमे वरवर्णिनि॥ ३१

अन्यल्लिङ्गं तु सुश्रोणि व्याघ्रपादप्रतिष्ठितम्।
तस्य सन्दर्शनाद्देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३२

गभस्तीशाग्रतो देवि विश्वकर्मप्रतिष्ठितम्।
अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि महात्मभिः॥ ३३

गभस्तीशस्य लिङ्गस्य नैर्ऋते वरवर्णिनि।
शशाङ्केश्वरनामानं लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ३४

गन्धर्वनगरं गत्वा राज्ञा चित्ररथेन हि।
तेन दृष्टेन देवेशि ईप्सितं फलमाप्नुयात्॥ ३५

चित्रेश्वरात् पश्चिमतो लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
जैमिनिस्थापितं पूर्वं महापातकनाशनम्॥ ३६

अग्रे तु जैमिनीशस्य कृतं लिङ्गं सुमन्तुना।
अन्यैश्च ऋषिभिस्तत्र लिङ्गानि सुबहूनि च॥ ३७

तेषां तु दक्षिणे भागे लिङ्गं पश्चान्मुखस्थितम्।
बुधेश्वरं तथा कोणे सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ ३८

बुधेश्वरात्तु कोणेन वायव्ये नातिदूरतः।
रावणेश्वरनामानं स्थापितं राक्षसेन तु॥ ३९

है। हे देवेशि! उस [लिङ्ग]-के दर्शनसे मनुष्य पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता है॥ २९-३०½॥

हे वरवर्णिनि! उसीके समीप पश्चिममें दूसरा लिङ्ग विद्यमान है, हे सुश्रोणि! वह [महर्षि] व्याघ्रपादके द्वारा स्थापित किया गया है, हे देवि! उसके दर्शनसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३२॥

हे देवि! गभस्तीशके आगे विश्वकर्माके द्वारा स्थापित लिङ्ग विद्यमान है। वहाँपर महात्माओंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं॥ ३३॥

हे वरवर्णिनि! गभस्तीशके लिङ्गके नैर्ऋतभागमें शशाङ्केश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। गन्धर्व-नगर जाकर राजा चित्ररथने लिङ्ग स्थापित किया था, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य अभीष्ट फल प्राप्त करता है॥ ३४-३५॥

चित्रेश्वरके पश्चिममें महापातकोंका नाश करनेवाला एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसे पूर्वकालमें [महर्षि] जैमिनिने स्थापित किया था। जैमिनीशके आगे [ऋषि] सुमन्तुके द्वारा स्थापित लिङ्ग विद्यमान है। वहाँ अन्य ऋषियोंने भी बहुत-से लिङ्ग स्थापित किये हैं॥ ३६-३७॥

उनके दक्षिणभाग कोणमें सभी प्रकारका सुख प्रदान करनेवाला बुधेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। बुधेश्वरके वायव्यकोणमें समीपमें ही राक्षस

रावणके द्वारा रावणेश्वर नामक लिङ्ग स्थापित किया

रावणेश्वरपूर्वे तु लिङ्गं देवि चतुर्मुखम्।
तेन दृष्टेन देवेशि यातुधानैर्न हन्यते॥ ४०

रावणेशाद्दक्षिणतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
वराहेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम्॥ ४१

वराहेशाद्दक्षिणतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
तस्यैवाराधनाद्देवि षण्मासाद्योगमाप्नुयात्॥ ४२

तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गं वै दक्षिणामुखम्।
गालवेश्वरनामानं गुरुभक्तिप्रदायकम्॥ ४३

गालवेश्वरदेवस्य लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
अयोगसिद्धिनामानं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ ४४

तस्यैव दक्षिणे देवि नाम्ना वातेश्वरं शुभम्।
तस्यैव चाग्रतो देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ ४५

सोमेश्वरेति विख्यातं लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं सर्वव्याधिक्षयो भवेत्।
तस्यैव नैर्ऋते भागे लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ४६

अङ्गारेश्वरनामानं सर्वसिद्धैर्नमस्कृतम्।
पूर्वेण तस्य देवस्य लिङ्गमन्यच्च तिष्ठति॥ ४७

कुक्कुटेश्वरनामानं गतिसौख्यप्रदायकम्।
तस्यैव चोत्तरे देवि पाण्डवैः सुमहात्मभिः॥ ४८

पञ्च लिङ्गानि पुण्यानि पश्चिमाभिमुखानि तु।
तेषामेते तु देवेशि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४९

संवर्तेश्वरनामानं स्थापितं यन्महर्षिणा।
ममैवात्यन्तसान्निध्यं तस्मिँल्लिङ्गे सुरेश्वरि॥ ५०

तल्लिङ्गमर्चयेद्यो वै तस्य सिद्धिः करे स्थिता।
संवर्तेशात् पश्चिमतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ५१

श्वेतेश्वरं तु विख्यातं श्वेतेन स्थापितं पुरा।
तेन दृष्टेन लिङ्गेन गाणपत्यं लभेद् ध्रुवम्॥ ५२

गया है॥ ३८-३९॥

हे देवि! रावणेश्वरके पूर्वमें एक चतुर्मुख लिङ्ग है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य राक्षसोंके द्वारा नहीं मारा जा सकता है॥ ४०॥

रावणेश्वरके दक्षिणमें सभी पापोंका नाश करनेवाला वराहेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वराहेश्वरके दक्षिणमें पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! मनुष्य उसकी आराधनासे छः महीनेमें योग प्राप्त कर लेता है॥ ४१-४२॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें गुरुभक्ति प्रदान करनेवाला गालवेश्वर नामक दक्षिणाभिमुख लिङ्ग विद्यमान है॥ ४३॥

गालवेश्वरदेवके समीपमें सभी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला अयोगसिद्धि नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उसीके दक्षिणमें वातेश्वर नामक शुभ लिङ्ग विद्यमान है। हे देवि! उसीके आगे मुखलिङ्ग स्थित है, वह लिङ्ग सोमेश्वर नामसे विख्यात है तथा पश्चिमाभिमुख स्थित है। उन देवदेवेशका दर्शन करनेसे सभी व्याधियोंका नाश हो जाता है॥ ४४-४५ १/२॥

उसीके नैर्ऋतभागमें सभी सिद्धोंसे नमस्कृत अंगारेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसके पूर्वमें शिवजीका कुक्कुटेश्वर नामक अन्य लिङ्ग स्थित है, वह गति तथा सुख प्रदान करनेवाला है॥ ४६-४७ १/२॥

हे देवि! उसीके उत्तरमें महात्मा पाण्डवोंके द्वारा पश्चिमाभिमुख पाँच पुण्यप्रद लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। हे देवेशि! उनके सामने संवर्तेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, जिसे महर्षि [संवर्त]-ने स्थापित किया है। हे सुरेश्वरि! उस लिङ्गमें मेरा अत्यन्त सान्निध्य रहता है। जो उस लिङ्गका अर्चन करता है, सिद्धि उसके हाथमें स्थित रहती है॥ ४८—५० १/२॥

संवर्तेश्वरके पश्चिममें एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वह श्वेतेश्वर नामसे विख्यात है, उसे पूर्वकालमें श्वेत [मुनि]-ने स्थापित किया था। उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य निश्चित रूपसे गाणपत्य प्राप्त करता है॥ ५१-५२॥

पश्चिमे तस्य दिग्भागे कलशेश्वरसंज्ञितम्।
कलशादुत्थितं लिङ्गं कालस्य भयदायकम्॥ ५३

उसके पश्चिम दिशाभागमें कलशसे उत्पन्न कलशेश्वर नामक लिङ्ग है, वह कालको भी भय प्रदान करनेवाला है॥ ५३॥

सूर्य उवाच

कथं कालस्य भयदं कलशादुत्थितः कथम्।
एतद्देव समाचक्ष्व यदनुग्रहवान् मयि॥ ५४

सूर्य बोले—वह [कलशेश्वरलिङ्ग] कालके लिये कैसे भयदायक है और कलशसे किस प्रकार प्रकट हुआ, हे देव! यदि आप मेरे प्रति कृपालु हैं, तो इसे बतायें॥ ५४॥

विष्णुरुवाच

तस्यैव देवदेवस्य प्रभावं शृणु भास्कर।
श्वेतो नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः॥ ५५

पूजयामास सततं लिङ्गं त्रिपुरघातिनः।
तस्य पूजाप्रसक्तस्य कदाचित्कालपर्यये॥ ५६

आजगाम तमुद्देशं कालः परमदारुणः।
रक्तान्तनयनो घोरः सर्पयष्टिकरो महान्॥ ५७

दंष्ट्राकरालो विकृतो भिन्नाञ्जनसमप्रभः।
रक्तवासा महाकायः सर्वाभरणभूषितः॥ ५८

विष्णु बोले—हे भास्कर! उस देवदेवके प्रभावको सुनो। श्वेत नामक महातेजस्वी तथा परम धार्मिक ऋषिने त्रिपुरका विनाश करनेवाले शिवजीके लिङ्गकी निरन्तर पूजा की। किसी समय पूजामें संलग्न उन मुनिके पास महाभयानक काल आया। वह पूर्ण रक्तनेत्रोंवाला, महाभयंकर, हाथमें सर्प-यष्टि धारण किये हुए, विकराल दाढ़ोंवाला, विकृत, अंजनके समान प्रभावाला, रक्त वस्त्र धारण किये हुए, विशाल देहवाला तथा सभी आभरणोंसे विभूषित था॥ ५५—५८॥

पाशहस्तस्तदाभ्येत्य श्वेते पाशमवासृजत्।
कण्ठार्पितेन पाशेन श्वेतः कालमथाब्रवीत्॥ ५९

क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व मम त्रिभुवनान्तक।
निवर्तयाम्यहं यावत् पूजनं मन्मथद्विषः॥ ६०

हाथमें पाश धारण किये हुए उस कालने आ करके श्वेतके ऊपर पाश फेंका। तब कण्ठमें लिपटे हुए उस पाशसे बद्ध श्वेतने कालसे कहा—हे त्रिभुवनविनाशक! तुम क्षणभर मेरी प्रतीक्षा करो, जबतक मैं कामदेवके शत्रु शिवकी पूजा सम्पन्न न कर लूँ॥ ५९-६०॥

तमब्रवीत्तदा कालः प्रहसन् वै सुरेश्वर।
न श्रुतं तत्त्वया मन्ये वृद्धानां ज्ञातजन्मनाम्॥ ६१

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम्॥ ६२

हे सुरेश्वर! तब कालने हँसते हुए उनसे कहा—मैं समझता हूँ कि तुमने ज्ञातजन्मा वृद्धोंका यह कथन नहीं सुना है कि कलका कार्य आज ही और अपराह्णका कार्य पूर्वाह्णमें कर लेना चाहिये। मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती है, चाहे उसका कार्य पूर्ण हो गया हो अथवा न हुआ हो॥ ६१-६२॥

गर्भे वाप्यथवा बाल्ये वार्द्धके यौवने तथा।
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं लीयते मया॥ ६३

प्राणी गर्भमें हो अथवा बाल्यावस्थामें, यौवनावस्था अथवा वृद्धावस्थामें हो—उसके आयु तथा कर्मके क्षीण होनेपर मैं उसका लय कर देता हूँ॥ ६३॥

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपः।
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया वापि मानवाः॥ ६४

मृत्यु तथा जरासे ग्रसित मनुष्योंकी रक्षा न तो औषधि, न मन्त्र, न होम, न जप अथवा न तो मनुष्य ही कर सकते हैं॥ ६४॥

बहूनीन्द्रसहस्त्राणि पितामहशतानि च।
मयातीतानि कर्तव्यो नात्र मन्युस्त्वयानघ॥ ६५

अनेक हजार इन्द्र तथा सैकड़ों पितामह मेरे सामने व्यतीत हो गये, हे अनघ! तुम्हें इस विषयमें क्रोध नहीं करना चाहिये॥ ६५॥

विधत्स्व पूजनं चास्य महादेवस्य शूलिनः।
देहन्यासो बहुविधो मया वै श्वेत कारितः॥ ६६

स्वयं प्रभुर्न चैवाहं कर्मायत्तगतिर्मम।
कर्मणा हि तथा नाशो नास्ति भूतस्य कस्यचित्॥ ६७

तुम इन शूलधारी महादेवका पूजन सम्पन्न कर लो। हे श्वेत! मैंने अनेकविध देहन्यास कराया। चूँकि मैं स्वयं प्रभु नहीं हूँ और मेरी गति कर्मके अधीन है, कर्मके आधारपर किसी भी प्राणीका नाश नहीं होता है॥ ६६-६७॥

कर्ममार्गानुसारेण धात्राहं सम्प्रयोजितः।
नयामि सर्वमाक्रम्य नीयमानस्त्रिलोचने॥ ६८

विधाताके द्वारा मैं भी कर्ममार्गके अनुसार नियुक्त किया गया हूँ। सबको ले जानेवाला मैं सभीपर आक्रमण करके उन्हें त्रिनेत्र शिवके पास ले जाता हूँ॥ ६८॥

एवमुक्तस्तु कालेन नीयमानस्त्रिलोचनम्।
जगाम सर्वभावेन शरणं भक्तवत्सलम्॥ ६९

कालके इस प्रकार कहनेपर वे उसके द्वारा ले जाये जाते हुए श्वेतमुनि पूर्णरूपसे भक्तवत्सल त्रिलोचनकी शरणको प्राप्त हुए॥ ६९॥

श्वेते तु शरणं प्राप्ते लिङ्गं सत्रिपुरान्तकम्।
चिन्तयामास कालस्य वधोपायं सुरेश्वरः॥ ७०

तब श्वेतके त्रिपुरान्तकसहित लिङ्गके शरणागत होनेपर सुरेश्वर [शिव] कालके वधका उपाय सोचने लगे॥ ७०॥

कलशं यत् स्थितं तस्य उदकेन प्रपूरितम्।
तं भित्त्वा तु समुत्तस्थौ क्रोधविस्फारितेक्षणः॥ ७१

तृतीयलोचनज्वालाप्रकाशितजगत्त्रयः।
दृष्टमात्रस्तदा तस्य कालो वीक्षणतेजसा॥ ७२

सहसा भस्मभूतः स सर्वभूतनिबर्हणः।
श्वेतस्य गत्वा सामीप्यं गणेशत्वं तथैव च॥ ७३

कृत्वा विनिग्रहं कालं तत्रैवान्तरधीयत।
ततः प्रभृति देवेशि कालः सङ्कलयेत् प्रजाः॥ ७४

वहाँपर उन श्वेतका जो जलपूर्ण कलश था, उसका भेदन करके क्रोधसे विस्फारित नेत्रोंवाले शिव प्रकट हो गये, उस समय वे अपने तीसरे नेत्रकी ज्वालासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रहे थे। तब उन्हें देखते ही उनके नेत्रके तेजसे सभी प्राणियोंका अन्त करनेवाला वह काल सहसा भस्म हो गया। इसके बाद श्वेतके पास जाकर शिवने उन्हें गणेशत्व प्रदान किया और कालका विनिग्रह करके वे वहीं अन्तर्धान हो गये। हे देवेशि! तभीसे काल प्रजाओंको संकलित करता है॥ ७१—७४॥

न कश्चित् पश्यते लोके विदेहत्वाज्जगत्त्रये।
तस्मात्तत्र स्वयंभूतो देवदेवः सुरारिहा॥ ७५

श्वेतस्य कलशं भित्त्वा कलशेश्वरमुच्यते।
तस्मात्तत्र स्थितं देवं यो निरीक्षति मानवः॥ ७६

उसके विदेहत्वके कारण तीनों लोकोंमें कोई भी उसे देख नहीं पाता है। देवशत्रुओंका संहार करनेवाले देवदेव [शिव] श्वेतके कलशका भेदन करके वहाँ स्वयं प्रकट हुए, इसलिये वे कलशेश्वर कहे जाते हैं। अतः हे भामिनि! जो मनुष्य वहाँपर स्थित देव (लिङ्ग)-का दर्शन करता है, उसका जन्म, मृत्यु, जरा,

जन्ममृत्युजराव्याधिर्नश्यते तस्य भामिनि।
यत्र श्वेतकृतं लिङ्गं भक्त्या योऽर्चयते नरः॥ ७७

जन्ममृत्युभयं भित्त्वा संसारं न विशेत्पुनः॥ ७८

व्याधि—यह सब नष्ट हो जाता है॥ ७५-७६½॥

जो मनुष्य वहाँ श्वेतमुनिके द्वारा स्थापित किये गये लिङ्गका भक्तिपूर्वक अर्चन करता है, वह जन्म-मृत्युके भयका भेदन करके पुनः संसारमें प्रवेश नहीं करता है॥ ७७-७८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

कलशेश्वरके समीपस्थ लिङ्गोंके माहात्म्यका वर्णन

ईश्वर उवाच

उत्तरे तस्य देवस्य चित्रगुप्तेश्वरं स्थितम्।
पश्चिमाभिमुखं देवं वाराणस्यां सुरेश्वरि॥ १

चित्रगुप्तं न पश्येत योऽत्र द्रक्ष्यति मानवः।
पश्चिमे चित्रगुप्तस्य अन्यल्लिङ्गं स्थितं शुभे॥ २

छायया स्थापितं लिङ्गं तं दृष्ट्वा नातपं भवेत्।
विनायकश्च तत्रैव पश्चिमेन यशस्विनि॥ ३

तस्य दर्शनमात्रेण विघ्नैर्नैवाभिभूयते।
कुण्डं तस्य तु पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४

मुखलिङ्गं तु तद्देवि विरूपाक्षं स्वयं प्रिये।
दक्षिणेन तु तस्यैव कूपस्तिष्ठति भामिनि॥ ५

दर्शनात्तस्य कूपस्य यमद्वारं न पश्यति।
कूपं चापि स्थितं तत्र उपस्पर्शनपुण्यदम्॥ ६

अन्यानि तत्र लिङ्गानि सुरैः संस्थापितानि च।
दक्षिणे कलशेशस्य लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ७

गुहेश्वरेति नामानं सर्वपुण्यफलप्रदम्।
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे द्वावेतौ तत्र संस्थितौ॥ ८

उत्तमेश्वरनामानं वामदेवमतः परम्।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ९

कम्बलाश्वतराक्षं तु गन्धर्वपददायकम्।
अपरं तस्य देवस्य लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १०

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! वाराणसीमें उस लिङ्गके उत्तरमें पश्चिमकी ओर मुखवाला चित्रगुप्तेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है॥ १॥

यहाँपर जो मनुष्य चित्रगुप्तेश्वरका दर्शन करता है, उसे पुनः संसारको नहीं देखना पड़ता है। हे शुभे! चित्रगुप्तके पश्चिममें छायाके द्वारा स्थापित किया गया अन्य लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गका दर्शन करनेसे आतपका कष्ट नहीं होता है। हे यशस्विनि! वहींपर पश्चिममें विनायक विद्यमान हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य विघ्नोंसे बाधित नहीं होता है॥ २-३½॥

उनके पूर्वमें एक कुण्ड तथा पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! हे प्रिये! वह स्वयं विरूपाक्ष नामक मुखलिङ्ग है। हे भामिनि! उसीके दक्षिणमें एक कूप स्थित है, उस कूपके दर्शनसे मनुष्य यमका द्वार नहीं देखता है। वहाँ जो कूप स्थित है, उसमें स्नान करना पुण्यप्रद है॥ ४—६॥

वहाँपर देवताओंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं। कलशेशके दक्षिणमें समस्त पुण्योंका फल प्रदान करनेवाला गुहेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसीके दक्षिणभागमें वहाँपर उत्तमेश्वर तथा वामदेव नामक—ये दो लिङ्ग स्थित हैं॥ ७-८½॥

हे देवि! उसीके पश्चिममें गन्धर्वपद प्रदान करनेवाला कम्बलाश्वतराक्ष नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वहाँ उन प्रभुका दूसरा पश्चिमाभिमुख लिङ्ग

नलकूबरेश्वरं नाम सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
तस्यैव दक्षिणे देवि मणिकर्णी च विश्रुता॥ ११

तस्य चाग्रे महत्तीर्थं सर्वपातकनाशनम्।
मणिकर्णीश्वरं देवं कुण्डमध्ये च तिष्ठति॥ १२

अनेनैव तु देहेन सिध्यते तस्य दर्शनात्।
तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १३

परिमेश्वरनामानं पूजनादजरो भवेत्।
तस्यैव च समीपस्थं लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १४

धर्मराजेन सुश्रोणि स्थापितं पापनाशनम्।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गमन्यच्चतुर्मुखम्॥ १५

निर्जरेश्वरनामानं व्याधीनां नाशनं परम्।
तस्य नैर्ऋतकोणे तु लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ १६

पितामहाश्चातिकायाः स्नाता ये शुभकर्मिणः।
पिण्डं दत्त्वा तथोक्तं च दृष्ट्वा देवं नदीश्वरम्॥ १७

ब्रह्मलोकात्तु ते पुण्या न च्यवन्ति कदाचन।
दक्षिणे तस्य देवस्य लिङ्गमन्यच्च तिष्ठति॥ १८

वारुणेश्वरनामानं स्थापितं वरुणेन हि।
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १९

बाणेन दैत्यराजेन स्थापितं मम भक्तितः।
तस्यैव दक्षिणे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २०

कूष्माण्डेश्वरनामानं सर्वधर्मफलप्रदम्।
तस्यैव पूर्वतो देवि राक्षसेन प्रतिष्ठितम्॥ २१

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु गङ्गया स्थापितेन तु।
गङ्गेश्वरेति नामानं सुरलोकप्रदायकम्॥ २२

तस्योत्तरेण देवेशि निम्नगाभिस्ततः शुभे।
लिङ्गानि स्थापितानीह गङ्गातीरे यशस्विनि॥ २३

वैवस्वतेश्वरं नाम दृष्ट्वा मृत्युभयापहम्।
वैवस्वतात्पश्चिमे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २४

स्थित है, नलकूबरेश्वर नामक वह लिङ्ग सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला है॥ ९-१०$^{1}/_{2}$॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें प्रसिद्ध मणिकर्णी विद्यमान है और उसके आगे सभी पापोंका नाश करनेवाला महातीर्थ स्थित है। मणिकर्णीश्वरदेव कुण्डके मध्यमें स्थित हैं, उनके दर्शनसे इसी शरीरसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ११-१२$^{1}/_{2}$॥

उसके उत्तर दिशाभागमें परिमेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसके पूजनसे मनुष्य जरारहित हो जाता है॥ १३$^{1}/_{2}$॥

हे सुश्रोणि! उसीके समीपमें धर्मराजके द्वारा स्थापित पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह पापोंका नाश करनेवाला है। हे देवि! उसीके पश्चिममें निर्जरेश्वर नामक अन्य चतुर्मुख लिङ्ग विद्यमान है, वह श्रेष्ठ लिङ्ग व्याधियोंका नाश करनेवाला है॥ १४-१५$^{1}/_{2}$॥

उसके नैर्ऋत्यकोणमें एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। शुभ कर्मवाले जो पितामह तथा अतिकाय आदि हैं, वे पुण्यशाली लोग यहाँ स्नान करके शास्त्रोक्त विधिसे पिण्डदान करके तथा नदीश्वरलिङ्गका दर्शन करके ब्रह्मलोकसे कभी च्युत नहीं होते हैं॥ १६-१७$^{1}/_{2}$॥

उस लिङ्गके दक्षिणमें वरुणके द्वारा स्थापित वारुणेश्वर नामक दूसरा लिङ्ग स्थित है। उसके दक्षिणभागमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, मेरी भक्तिसे युक्त होकर दैत्यराज बाणने उसे स्थापित किया है॥ १८-१९$^{1}/_{2}$॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें सभी धर्मोंका फल प्रदान करनेवाला कूष्माण्डेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उसीके पूर्वमें राक्षसके द्वारा स्थापित एक लिङ्ग विद्यमान है॥ २०-२१॥

उसके दक्षिणभागमें गंगाके द्वारा स्थापित गंगेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह देवलोक प्रदान करनेवाला है। हे देवेशि! हे शुभे! हे यशस्विनि! उसके उत्तरमें यहाँपर नदियोंके द्वारा गंगाके तटपर [अनेक] लिङ्ग स्थापित किये गये हैं॥ २२-२३॥

वहाँ वैवस्वतेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करनेसे

आदित्यैः स्थापितं भद्रे आत्मनः श्रेयसोऽर्थिभिः।
तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २५

वज्रेश्वरेति नामाख्यं सर्वपातकनाशनम्।
तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २६

कनकेश्वरनामानं गुह्यं देवि सनातनम्।
छायेव दृश्यते लिङ्गे स्थाप्यमाने यशस्विनि॥ २७

छायां च पश्यते यो वै न स पापेन लिप्यते।
तस्यैव चाग्रतो देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ २८

तारकेश्वरनामानं सर्वपापहरं शुभम्।
पूजनाच्चास्य लिङ्गस्य ज्ञानावाप्तिर्भवेन्नृणाम्॥ २९

अपरं तत्र देवेशि कनकेश्वरसंज्ञितम्।
पूजनात्स्वयमेवात्र हिरण्यं संप्रयच्छति॥ ३०

कनकेश्वरस्योत्तरेण नाम्ना च मनुजेश्वरम्।
मुखलिङ्गं पश्चिमतः सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३१

तस्यैव चाग्रतो देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
इन्द्रेण स्थापितं देवि मम भक्त्या प्रतिष्ठितम्॥ ३२

तस्य दर्शनमात्रेण देवि ज्ञानं प्रवर्तते।
तस्यैव दक्षिणे देवि रम्भया सम्प्रतिष्ठितम्॥ ३३

मुखलिङ्गं च तं देवि दक्षिणाभिमुखं स्थितम्।
इन्द्रेश्वरस्योत्तरेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ३४

शच्या च स्थापितं भद्रे देवराजस्य भार्यया।
तस्योत्तरदिशाभागे लोकपालैः प्रतिष्ठितम्॥ ३५

अन्यानि तत्र लिङ्गानि देवासुरमरुद्गणैः।
यक्षैर्नागैश्च गन्धर्वैः किन्नराप्सरसां गणैः॥ ३६

लोकपालैः सुरैश्चैव लिङ्गानि स्थापितानि तु।
तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं महापातकनाशनम्॥ ३७

पूर्वामुखं तु तं भद्रे फाल्गुनेन प्रतिष्ठितम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे महापाशुपतेश्वरम्॥ ३८

मृत्युका भय दूर हो जाता है। वैवस्वतके पश्चिममें पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २४॥

हे भद्रे! अपने कल्याणकी इच्छावाले आदित्योंके द्वारा वह स्थापित किया गया है। हे भद्रे! उसीके आगे सभी पापोंका नाश करनेवाला वज्रेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २५ $^1/_2$॥

हे भद्रे! हे देवि! उसीके आगे कनकेश्वर नामक गुह्य तथा सनातन पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे यशस्विनि! उस स्थापित लिङ्गमें छाया-जैसी दिखायी देती है, जो उसमें छायाका दर्शन करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता है। हे देवि! उसीके आगे सभी पापोंका नाश करनेवाला तारकेश्वर नामक पूर्वाभिमुख शुभ लिङ्ग स्थित है, इस लिङ्गके पूजनसे मनुष्योंको ज्ञानकी प्राप्ति होती है॥ २६—२९॥

हे देवेशि! वहाँ कनकेश्वर नामक दूसरा लिङ्ग है, इसके पूजनसे यह स्वयं सुवर्ण प्रदान करता है॥ ३०॥

कनकेश्वरके उत्तरमें सभी पापोंको नष्ट करनेवाला मनुजेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख मुखलिङ्ग स्थित है॥ ३१॥

हे देवि! उसीके आगे एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! इन्द्रने मेरी भक्तिसे उसे स्थापित किया है। हे देवि! उसके दर्शनमात्रसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है॥ ३२ $^1/_2$॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें रम्भाके द्वारा मुखलिङ्ग स्थापित किया गया है, हे देवि! वह दक्षिणाभिमुख स्थित है। इन्द्रेश्वरके उत्तरमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे भद्रे! देवराजकी पत्नी शचीने उसे स्थापित किया है। उसके उत्तर दिशाभागमें लोकपालोंके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ३३—३५॥

देवताओं, असुरों, मरुद्गणों, यक्षों, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों, अप्सराओं, लोकपालों तथा सुरोंके द्वारा वहाँपर अनेक लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। उसीके दक्षिणमें महापातकोंका नाश करनेवाला पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! वह फाल्गुनके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ३६-३७ $^1/_2$॥

तेन दृष्टेन देवेशि सर्वज्ञानस्य भाजनम्।
तस्यैव पश्चिमे देवि समुद्रेण प्रतिष्ठितम्॥ ३९

उसके दक्षिण दिशाभागमें महापाशुपतेश्वर [नामक] लिङ्ग स्थित है। हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य सम्पूर्ण ज्ञानका भाजन हो जाता है। हे देवि! उसीके पश्चिममें समुद्रके द्वारा एक लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ३८-३९॥

तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे ईशानं लोकविश्रुतम्।
आत्मानमुद्धरेद्देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४०

उसीके दक्षिणभागमें लोकप्रसिद्ध पश्चिमाभिमुख ईशानलिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसके दर्शनसे मनुष्य अपना उद्धार कर लेता है॥ ४०॥

तस्यापि देवि पूर्वेण वाराणस्यां तु लाङ्गलिः।
मोक्षप्रदं तु तल्लिङ्गं सर्वैश्वर्यमयं शुभम्॥ ४१

हे देवि! उसके भी पूर्वमें वाराणसीके अन्तर्गत लांगलि नामक लिङ्ग है, सभी ऐश्वर्योंसे युक्त और शुभ वह लिङ्ग मोक्ष देनेवाला है॥ ४१॥

ज्ञात्वा कलियुगं घोरं हाहाभूतमचेतनम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय तस्मिन् देशे स्थितो ह्यहम्॥ ४२

कलियुगको भयंकर, हाहाकारसे युक्त तथा अचेतन जानकर मैं ब्राह्मणोंके हितके लिये उस स्थानमें स्थित हूँ॥ ४२॥

दिव्या हि सा परा मूर्तिर्दिव्यज्ञानं हि तत् स्मृतम्।
अनुग्रहाय विप्राणां योजयिष्ये व्रतेन तु॥ ४३

वह मूर्ति दिव्य है तथा उसे दिव्यज्ञान कहा गया है। विप्रोंपर अनुग्रह करनेके लिये मैं उन्हें [पाशुपत] व्रतसे युक्त करता हूँ॥ ४३॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एतेषां हि विभेदस्तु भिन्नाश्चैव पृथक् पृथक्॥ ४४

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा यति—इनमें परस्पर भेद है और ये भिन्न-भिन्न रूपोंमें पृथक् रूपसे स्थित हैं॥ ४४॥

ज्ञानेन रहिताः सर्वे पुनरावर्तकाः स्मृताः।
ब्राह्मणानां हितार्थाय ज्ञानं चैव प्रकाशितम्॥ ४५

ज्ञानरहित ये सब बार-बार जन्म लेनेवाले कहे गये हैं। ब्राह्मणोंके हितके लिये मैंने पाशुपतका ज्ञान प्रकाशित किया है॥ ४५॥

वेदाः सर्वे समादाय षडङ्गाः सपदक्रमाः।
सर्वाणि योगशास्त्राणि दध्ना चैव घृतेन च॥ ४६

तथा वेदे महाभागे व्रतं पाशुपतं प्रिये।
षण्मासैस्तु महाभागे योगैश्वर्यं प्रवर्तते॥ ४७

हे महाभागे! हे प्रिये! जो छः अंगों और पद एवं क्रमसहित सभी वेद तथा सभी योगशास्त्र हैं, उन्हें लेकर दधिसे घृतकी भाँति वेदमें पाशुपतव्रतको प्रकाशित किया गया है। हे महाभागे! पाशुपतव्रत करनेपर छः महीनेमें योगैश्वर्य प्राप्त होता है॥ ४६-४७॥

यस्य यस्य प्रभावोऽस्ति योगस्यैव व्रतस्य च।
योगज्ञेषु हि तिष्ठेत धर्मं सुखं हि तेषु च॥ ४८

जिसके-जिसके योग तथा व्रतका प्रभाव होता है, उन्हीं योगज्ञानियोंमें धर्म तथा सुख स्थित रहते हैं॥ ४८॥

ब्राह्मणानां समो धर्मो दमो वाथ यशस्विनि।
अहिंसा चैव सत्यं च विद्याभिगम एव च॥ ४९

हे यशस्विनि! धर्म, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, सत्य तथा विद्याध्ययन—ये सब ब्राह्मणोंके लिये समानरूपसे विहित हैं॥ ४९॥

मैत्रो वै ब्राह्मणो नित्यं गतिं प्राप्नोति चोत्तमाम्।
भस्मशायी तु तिष्ठेत अन्तस्सवनकृत्तथा॥ ५०

सभीसे मित्रताका भाव रखनेवाला ब्राह्मण सदा उत्तम गति प्राप्त करता है। पाशुपतव्रतीको चाहिये कि

लिङ्गनिर्माल्यधारी च यतिस्स्वायतने वसेत्।
जपगीतहुडुङ्कारस्तुतिकृत्यपरः सदा॥ ५१

भावनाद्देवदेवस्य दक्षिणां मूर्तिमास्थितः।
अकस्मात्तत्र मूत्रं तु पुरीषं वा न संक्षिपेत्॥ ५२

स्त्रीशूद्रौ नाभिभाषेत शूद्रान्नं वर्जयेत् सदा।
शूद्रान्नरसपुष्टस्य निष्कृतिस्तस्य कीदृशी॥ ५३

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम्।
वैश्यान्नमन्नमित्याहुः शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम्॥ ५४

तस्माद्वर्जेत तद्देवि यदीच्छेन्मामकं पदम्।
श्मशानवासी धर्मात्मा यथालब्धेन वर्तते॥ ५५

लभेत रुद्रसायुज्यं सदा रुद्रमनुस्मरन्।
षण्मासाल्लभते ज्ञानमस्मिन् क्षेत्रे विशेषतः॥ ५६

नित्यं पूजयते देवं ध्रुवं मोक्षं न संशयः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः सिद्धायतनपूजकाः॥ ५७

तेषां मोक्षो मयाख्यातस्तत्र यैर्मानुषैः कृताः।
द्वाविंशे परिवर्ते तु वाराणस्यां महाव्रते॥ ५८

नाम्ना तु नकुलीशेति तस्मिन् स्थाने स्थितो ह्यहम्।
द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्नवकीर्णं दिवौकसः॥ ५९

अत्र स्थानेऽपि देवेशि मम पुत्रा दिवौकसः।
वक्रानिर्मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तथापरः॥ ६०

अस्मिन् माहेश्वरं योगं प्राप्य योगगतिं पराम्।
नकुलीशाख्यदेवस्य लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ६१

चतुर्भिः पुरुषैर्युक्तं तल्लिङ्गं तच्च संस्थितम्।
तद् दृष्ट्वा मानवो देवि रुद्रस्यैव सलोकताम्॥ ६२

नकुलीशेश्वरं देवं कपिलेश्वरमेव च।
पञ्चायतनमेतत्तु यत्तु पूर्वमुदाहृतम्॥ ६३

भस्मधारण किये रहे, अन्तर्याग करनेवाला तथा लिङ्गनिर्माल्यधारी यतिको अपने निवासस्थानमें रहना चाहिये। शिवकी भावना करके उन देवाधिदेवकी दक्षिणामूर्तिमें आस्था रखकर जप, गीत, हुडुङ्कार, स्तुति आदि कृत्योंमें सदा संलग्न रहना चाहिये। सहसा मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये॥ ५०—५२॥

स्त्री तथा शूद्रसे भाषण नहीं करना चाहिये और शूद्रके अन्नका सदा त्याग करना चाहिये। शूद्रके अन्न तथा रससे पुष्ट व्यक्तिकी निष्कृति कैसे हो सकती है?॥ ५३॥

ब्राह्मणका अन्न अमृत तथा क्षत्रियका अन्न दुग्ध कहा गया है। वैश्यके अन्नको अन्न कहा गया है और शूद्रके अन्नको रुधिर कहा गया है॥ ५४॥

अतः हे देवि! यदि कोई मेरे लोककी इच्छा करता हो, तो उसे शूद्रके अन्नका त्याग कर देना चाहिये और श्मशानवासी तथा धर्मात्मा होकर यथोपलब्ध अन्नसे निर्वाह करना चाहिये॥ ५५॥

सर्वदा रुद्रका स्मरण करनेवाला रुद्रका सायुज्य प्राप्त करता है और विशेष रूपसे इस क्षेत्रमें छः महीनेमें ही ज्ञान प्राप्त करता है॥ ५६॥

जो शिवजीकी नित्य पूजा करता है, वह निश्चित रूपसे मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। सिद्धलिङ्गोंकी पूजा करनेवाले राग-द्वेषसे मुक्त होते हैं॥ ५७॥

जो मनुष्य वहाँ सिद्ध आयतनोंकी पूजामें संलग्न रहते हैं, मेरे द्वारा उनका मोक्ष बताया गया है। हे महाव्रते! मैं बाईसवें चतुर्युगीमें वाराणसीमें नकुलीश नामसे उस स्थानमें स्थित रहूँगा। देवतालोग कलियुगमें उस लिङ्गमें आविर्भूत मेरा दर्शन करेंगे॥ ५८-५९॥

हे देवेशि! इस स्थानपर भी स्वर्गमें निवास करनेवाले वक्रानि, मधुपिंग, श्वेतकेतु नामवाले मेरे पुत्र इस लिङ्गमें माहेश्वरयोग प्राप्त करके श्रेष्ठ योगगतिको प्राप्त हुए। नकुलीश नामक देवका लिङ्ग पूर्वाभिमुख स्थित है। वह लिङ्ग चार पुरुषोंसे युक्त होकर स्थित है। हे देवि! उसका तथा नकुलीशेश्वर और कपिलेश्वरका दर्शन करके मनुष्य रुद्रका सालोक्य प्राप्त करता है। यही पंचायतन है, जिसे

रहस्यं परमं वेदं मम व्रतनिषेवणम्।
तेषां न कथनीयोऽहं ये मद्भक्तिविवर्जिताः॥ ६४

पहले ही कह दिया गया है॥ ६०—६३॥

मेरा यह व्रत-सेवन परम रहस्यमय है, जो मेरी भक्तिसे रहित हैं, उनसे मेरे विषयमें नहीं बताना चाहिये॥ ६४॥

शक्रः पाशुपते चोक्तं पदे सम्यङ्निषेवितम्।
तत् पदं विन्दते देवि दृष्टैरेव न संशयः॥ ६५

प्रीतिमान् सततं देवि एभिर्दृष्टैश्च जायते।
अविमुक्तं महाक्षेत्रं सिद्धसङ्घनिषेवितम्॥ ६६

अत्र पूजयते देवि ध्रुवं मोक्षो न संशयः।
सिद्धिकामास्तथा सिद्धिं यास्यन्ति द्विजसत्तमाः॥ ६७

पाशुपतपदमें सम्यक् व्रतनिषेवण कहा गया है। हे देवि! इन्द्रने इन लिङ्गोंके दर्शनसे उस पदको प्राप्त किया था, इसमें सन्देह नहीं है। इन लिङ्गोंके दर्शनसे मनुष्य सदा शिवमें प्रीति रखनेवाला हो जाता है॥ ६५$^1/_2$॥

अविमुक्त महाक्षेत्र है तथा सिद्धगणोंके द्वारा सेवित है, हे देवि! जो यहाँ [शिवका] पूजन करता है, उसका निश्चित रूपसे मोक्ष हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। सिद्धिकी इच्छावाले द्विजश्रेष्ठ यहाँ सिद्धि प्राप्त करेंगे॥ ६६-६७॥

इह दत्तं सदाक्षय्यं भविष्यति महात्मनाम्।
द्विजानां धर्मनित्यानां मम व्रतनिषेविणाम्॥ ६८

एकाहमुपवासं यः करिष्यति यशस्विनि।
फलं वर्षशतस्येह लभते मत्परायणः॥ ६९

मेरा व्रत करनेवाले धर्मनिष्ठ महात्माओं तथा द्विजोंको यहाँ दिया हुआ दान सदा अक्षय होगा। हे यशस्विनि! जो व्यक्ति मेरे प्रति परायण होकर यहाँ एक दिन उपवास करता है, वह सौ वर्षके उपवासका फल प्राप्त करता है॥ ६८-६९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

अविमुक्त तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका माहात्म्य-वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं वक्ष्ये वाराणस्यां सुरेश्वरि।
यत्र वै देववदेवस्य रुचिरं स्थानमीप्सितम्॥ १

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! अब मैं वाराणसीमें स्थित अन्य आयतनका वर्णन करूँगा, जो देवदेवका रुचिर अभीष्ट स्थान है॥ १॥

नीयमानं पुरा देवि तल्लिङ्गं शशिमौलिनः।
राक्षसैरन्तरिक्षस्थैर्व्रजमानं सुसत्वरम्॥ २

हे देवि! पूर्वकालमें अन्तरिक्षमें स्थित राक्षसोंके द्वारा चन्द्रशेखर शिवका वह लिङ्ग शीघ्रतापूर्वक लाया गया॥ २॥

अस्मिन् देशे यदायातास्तदा देवेन चिन्तितम्।
अविमुक्ते न मोक्षस्तु कथं मे सम्भविष्यति॥ ३

इममर्थं तु देवेशो यावच्चिन्तयते प्रभुः।
तावत् कुक्कुटशब्दस्तु तस्मिन् देशे समुत्थितः॥ ४

जब वे राक्षस इस स्थानमें आये, तब शिवजीने सोचा कि अब मेरे अविमुक्तमें मोक्ष सम्भव नहीं है, तो फिर यह कैसे होगा? जब वे देवेश प्रभु इस बातको सोच रहे थे, उसी समय उस स्थानमें कुक्कुटका शब्द

शब्दं श्रुत्वा तु तं देवि राक्षसास्त्रस्तचेतसः।
लिङ्गमुत्सृज्य भीतास्ते प्रभातसमये गताः॥ ५

गतैस्तु राक्षसैर्देवि लिङ्गं तत्रैव संस्थितम्।
स्थाने तु रुचिरे शुभ्रे देवदेवः स्वयं प्रभुः॥ ६

अविमुक्तस्तत्र मध्ये अविमुक्तं ततः स्मृतम्॥ ७

तदाविमुक्ते तु सुरैर्हरस्य
नाम स्मृतं पुण्यतमाक्षराढ्यम्।
मोक्षप्रदं स्थावरजङ्गमानां
ये प्राणिनः पञ्चतां यत्र याताः॥ ८

कुक्कुटाश्चापि देवेशि तस्मिन् स्थाने स्थिताः सदा।
अद्यापि तत्र दृश्यन्ते पूज्यमानाः शुभार्थिभिः॥ ९

अविमुक्तं सदा लिङ्गं योऽत्र द्रक्ष्यति मानवः।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १०

देवस्य दक्षिणे भागे वापी तिष्ठति शोभना।
तस्यास्तथोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ११

पीतमात्रेण तेनैव उदकेन यशस्विनि।
त्रीणि लिङ्गानि वर्धन्ते हृदये पुरुषस्य तु॥ १२

एतद्गुह्यं महादेवि न देयं यस्य कस्यचित्।
दण्डपाणिस्तु तत्रस्थो रक्षते तज्जलं सदा॥ १३

पश्चिमं तीरमासाद्य देवदेवस्य शासनात्।
पूर्वेण तारको देवो जलं रक्षति सर्वदा॥ १४

नन्दीशश्चोत्तरेणैव महाकालस्तु दक्षिणे।
रक्षते तज्जलं नित्यं मद्भक्तानां तु मोहनम्॥ १५

विष्णुरुवाच

ममापि सा परा देवि तनुरापोमयी शुभा।
अप्राप्या दुर्लभा देवि मानवैरकृतात्मभिः॥ १६

होने लगा॥ ३-४॥

हे देवि! उस शब्दको सुनकर सन्तप्त मनवाले वे राक्षस डरकर लिङ्गको छोड़कर प्रभात वेलामें चले गये॥ ५॥

हे देवि! राक्षसोंके चले जानेपर वह लिङ्ग वहींपर स्थित हो गया। उस सुन्दर तथा शुभ्र स्थानमें स्वयं देवदेव प्रभु विराजमान हो गये। उसके मध्यमें वे अविमुक्तरूपमें स्थित हुए, इसलिये उसे अविमुक्त कहा गया है॥ ६-७॥

अविमुक्तमें देवताओंके द्वारा शिवका नाम पुण्यतम अक्षरोंसे युक्त कहा गया है, स्थावर-जंगमोंमें जो प्राणी वहाँ पंचत्वको प्राप्त होते हैं, उनके लिये यह मोक्षप्रद है॥ ८॥

हे देवेशि! उस स्थानमें कुक्कुट सदा रहते हैं, [अपने] कल्याणकी कामना करनेवाले लोगोंके द्वारा पूजित होते हुए वे [कुक्कुट] आज भी वहाँ देखे जाते हैं॥ ९॥

जो मनुष्य यहाँ अविमुक्तलिङ्गका सदा दर्शन करेगा, उसका पुनर्जन्म सौ करोड़ कल्पोंमें भी नहीं होगा॥ १०॥

उस लिङ्गके दक्षिणभागमें एक सुन्दर [ज्ञान-] वापी है, उसका जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ११॥

हे यशस्विनि! उस जलके पानमात्रसे ही पुरुषके हृदयमें तीन लिङ्ग उत्पन्न होते हैं॥ १२॥

हे महादेवि! इस रहस्यको जिस-किसीको भी नहीं बताना चाहिये। देवदेवकी आज्ञासे पश्चिम तटपर आकर वहाँ विद्यमान दण्डपाणि उस जलकी सदा रक्षा करते हैं। पूर्वमें तारकदेव सदा जलकी रक्षा करते हैं। उत्तरमें नन्दीश तथा दक्षिणमें महाकाल मेरे भक्तोंके लिये प्रिय उस जलकी नित्य रक्षा करते हैं॥ १३—१५॥

विष्णु बोले—हे देवि! वह श्रेष्ठ तथा शुभ जलमयी मूर्ति मेरी ही है। हे देवि! वह दुर्लभ मूर्ति

यैस्तु तत्र जलं पीतं कृतार्थास्ते तु मानवाः।
तेषां तु तारकं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः॥ १७

वापीजले नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै दण्डनामकम्।
अविमुक्तं ततो दृष्ट्वा कैवल्यं लभते क्षणात्॥ १८

अविमुक्तस्य चाग्रे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
प्रीतिकेश्वरनामानं प्रीतिं यच्छति शाश्वतीम्॥ १९

अविमुक्तोत्तरेणैव लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
अविमुक्तं च तं देवि नाम्ना वै मोक्षकेश्वरम्॥ २०

तेन दृष्टेन देवेशि ज्ञानवान् जायते नरः।
तस्य चोत्तरतो देवि लिङ्गं चैव चतुर्मुखम्॥ २१

वरुणेश्वरनामानं पापानां भयमोचनम्।
पूर्वेण तस्य संलग्नं मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ २२

सुवर्णाक्षेश्वरं नाम यज्ञानां फलदायकम्।
तस्य चैवोत्तरे गौरी स्वयं तिष्ठति पुण्यदा॥ २३

तस्यास्तु दर्शनाद्देव्याः सौभाग्यं जायते परम्।
दक्षिणे तस्य देवस्य निकुम्भो नाम वै गणः॥ २४

तं दृष्ट्वा मानुषो देवि क्षेत्रवासं तु विन्दति।
विनायकश्च तत्रैव पश्चिमेन यशस्विनि॥ २५

तस्य दर्शनमात्रेण विघ्नैर्नैवाभिभूयते।
निकुम्भस्य तु पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २६

मुखलिङ्गं तु तं देवि विजयाख्यं स्वयं प्रिये।
दक्षिणेन तु तत्रैव शुक्रेश्वरमिति स्मृतम्॥ २७

मुखलिङ्गं तु तं भद्रे शुक्रेण स्थापितं पुरा।
पूर्वामुखं तु तं भद्रे शिवलोकप्रदायकम्॥ २८

तस्यैव चोत्तरे देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
पश्चान्मुखं तु तं देवि देवयान्या तु स्थापितम्॥ २९

पापात्मा मनुष्योंके द्वारा अप्राप्य है॥ १६॥

जिन्होंने उस जलका पान कर लिया, वे मनुष्य धन्य हैं और उनमें तारक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १७॥

उस वापीके जलमें स्नान करके दण्ड-पाणिका दर्शनकर और इसके बाद अविमुक्त [लिङ्ग]-का दर्शन करके मनुष्य क्षणभरमें कैवल्य प्राप्त करता है॥ १८॥

अविमुक्तके आगे प्रीतिकेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह शाश्वत प्रीति प्रदान करता है। अविमुक्तके उत्तरमें ही एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! वह भी अविमुक्त है तथा मोक्षकेश्वर नामसे प्रसिद्ध है॥ १९-२०॥

हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य ज्ञानी हो जाता है। हे देवि! उसके उत्तरमें पापियोंके भयका नाश करनेवाला वरुणेश्वर नामक चतुर्मुख लिङ्ग विद्यमान है॥ २१ $^{1}/_{2}$॥

उसके पूर्वमें समीपमें ही यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाला सुवर्णाक्षेश्वर नामक मुखलिङ्ग स्थित है। उसीके उत्तरमें पुण्यदायिनी स्वयं गौरी स्थित हैं, उन देवीके दर्शनसे परम सौभाग्य प्राप्त होता है॥ २२-२३ $^{1}/_{2}$॥

उस [सुवर्णाक्षेश्वर] देवके दक्षिणमें निकुम्भ नामक गण विद्यमान है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य क्षेत्रवास प्राप्त करता है। हे यशस्विनि! वहींपर पश्चिममें विनायक स्थित हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य विघ्नोंसे बाधित नहीं होता है॥ २४-२५ $^{1}/_{2}$॥

निकुम्भके पूर्वमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! हे प्रिये! वह साक्षात् विजय नामक मुखलिङ्ग है। वहींपर दक्षिणमें शुक्रेश्वर नामक मुखलिङ्ग बताया गया है, हे भद्रे! शुक्राचार्यने उसे पूर्वकालमें स्थापित किया था। हे भद्रे! वह पूर्वाभिमुख है तथा शिवलोक प्रदान करनेवाला है॥ २६—२८॥

हे देवि! उसीके उत्तरमें पश्चिमकी ओर मुखवाला एक मुखलिङ्ग स्थित है, हे देवि! वह देवयानीके द्वारा स्थापित किया गया है॥ २९॥

तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
कचेन स्थापितं भद्रे देवाचार्यस्य सूनुना॥ ३०

हे भद्रे! उसीके आगे पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे भद्रे! देवताओंके आचार्य बृहस्पतिके पुत्र कचके द्वारा वह स्थापित किया गया है॥ ३०॥

तस्यैव च समीपे तु कूपस्तिष्ठति सुव्रते।
तस्योपस्पर्शनाद्देवि सर्वमेधफलं लभेत्॥ ३१

हे सुव्रते! उसीके समीपमें एक कूप स्थित है, हे देवि! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ ३१॥

तस्यैव पश्चिमे भागे देवो देवी च तिष्ठतः।
भक्तिदौ तौ तु सर्वेषां येऽपि दुष्कृतिनो नराः॥ ३२

उसीके पश्चिमभागमें देव (शिव) तथा देवी (पार्वती) स्थित हैं। जो बुरा कर्म करनेवाले मनुष्य हैं, उन सबको भी वे भक्ति देनेवाले हैं॥ ३२॥

शुक्रेश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
अनर्केश्वरनामानं मोक्षदं सर्वदेहिनाम्॥ ३३

तस्यैव पूर्वतो भागे गणैस्तु परिवारितम्।
गणेश्वरमिति ख्यातं सर्वहर्षप्रदायकम्॥ ३४

शुक्रेश्वरके पूर्वमें सभी प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला अनर्केश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसीके पूर्वभागमें गणोंसे घिरा हुआ गणेश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग विद्यमान है, वह सभीको हर्ष प्रदान करनेवाला है॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीराम, दत्तात्रेय, हरिकेश, प्रियव्रत तथा ब्रह्माजीद्वारा स्थापित लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं वक्ष्ये वाराणस्यां सुरेश्वरि।
रामेण स्थापितं लिङ्गं लङ्कायाश्चागतेन हि॥ १

ईश्वर बोले—अब मैं वाराणसीमें स्थित अन्य लिङ्गोंका वर्णन करूँगा। लंकासे लौटकर श्रीरामचन्द्रजीने एक लिङ्ग स्थापित किया है॥ १॥

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
त्रिपुरान्तकरं नाम सर्वपापप्रणाशनम्॥ २

उसके दक्षिणभागमें सभी पापोंका नाश करनेवाला त्रिपुरान्तकर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २॥

तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं दत्तात्रेयप्रतिष्ठितम्।
ज्ञानं चोत्पद्यते देवि तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ ३

उसीके दक्षिणमें [महर्षि] दत्तात्रेयद्वारा स्थापित लिङ्ग है, हे देवि! उस लिङ्गके दर्शनसे ज्ञान उत्पन्न होता है॥ ३॥

तस्य पश्चिमदिग्भागे हरिकेशेश्वरं शुभम्।
तत्रैवाराधितो देवि हरिकेशेन सुव्रते॥ ४

हरिकेशेश्वरं देवं सर्वकिल्विषनाशनम्।
तस्य पश्चिमदिग्भागे गोकर्णं नाम विश्रुतम्॥ ५

उसके पश्चिम दिशाभागमें हरिकेशेश्वर नामक शुभ लिङ्ग है। हे देवि! हे सुव्रते! हरिकेशने वहाँपर मेरी आराधना की थी। हरिकेशेश्वरलिङ्ग सभी पापोंका नाश करनेवाला है। उसके पश्चिम-दिशाभागमें गोकर्ण नामक प्रसिद्ध तीर्थ विद्यमान है॥ ४-५॥

तत्र स्नातो वरारोहे राजते देवि चन्द्रवत्।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं काशिपुर्यां च सुव्रते॥ ६

हे वरारोहे! हे देवि! वहाँ स्नान किया हुआ मनुष्य चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित होता है। हे सुव्रते! काशीपुरीमें

उत्तरं सर्वसिद्धानामनन्तफलदायकम्।
देवदेवस्य चैवाग्रे तडागं देवविश्रुतम्॥ ७

उत्तरकी ओर सभी सिद्धोंको अनन्त फल देनेवाला पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उस देवदेवके आगे देवविश्रुत तडाग विद्यमान है॥ ६-७॥

तत्र स्नातो वरारोहे राजते देवि चन्द्रवत्।
तस्यैव पश्चिमे तीरे लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ८

देवेन स्थापितं भद्रे मम भक्तिपरेण वै।

हे वरारोहे! हे देवि! वहाँ स्नान किया हुआ मनुष्य चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशमान् हो जाता है। हे भद्रे! उसीके पश्चिम तटपर मेरी भक्तिसे युक्त देवताके द्वारा स्थापित पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ८१/२ ॥

तस्यैव चाग्रतो देवि कुण्डं तिष्ठति भामिनि॥ ९
तस्मिन् स्नातो वरारोहे देवलोकमवाप्नुयात्।
देवेश्वरस्योत्तरेण पिशाचैः स्थापितं पुरा॥ १०
पिशाचेश्वरनामानं मोक्षदं सर्वदेहिनाम्।

हे देवि! हे भामिनि! उसीके आगे एक कुण्ड स्थित है। हे वरारोहे! उसमें स्नान करनेवाला देवलोक प्राप्त करता है। देवेश्वरके उत्तरमें पूर्वकालमें पिशाचोंके द्वारा स्थापित पिशाचेश्वर नामक लिङ्ग है, वह सभी प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ ९-१०१/२ ॥

ध्रुवेशस्याग्रतो देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ ११
पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं तीरे कुण्डस्य भामिनि।
वैद्यनाथं तु तं विद्यात् सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ १२

हे देवि! ध्रुवेशके आगे पश्चिमाभिमुख मुखलिङ्ग स्थित है, हे भामिनि! वह लिङ्ग कुण्डके तटपर विद्यमान है। सभी प्रकारका सुख प्रदान करनेवाले उस लिङ्गको वैद्यनाथ नामवाला जानना चाहिये॥ ११-१२॥

तस्यैव नैर्ऋते भागे मनुना स्थापितं पुरा।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं तस्य कुण्डस्य दक्षिणे॥ १३
तेन दृष्टेन सुश्रोणि सर्वपापक्षयो भवेत्।

उसीके नैर्ऋतकोणमें पूर्वकालमें मनुके द्वारा स्थापित पूर्वाभिमुख लिङ्ग है, वह लिङ्ग कुण्डके दक्षिणमें स्थित है। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे सभी पापोंका नाश हो जाता है॥ १३१/२ ॥

वैद्यनाथस्य पूर्वेण लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ १४
मुचुकुन्देश्वरं नाम देवानां तु वरप्रदम्।
प्रियव्रतस्य तद्देवि सर्वयज्ञफलप्रदम्॥ १५

वैद्यनाथके पूर्वमें देवताओंको वर प्रदान करनेवाला मुचुकुन्देश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह लिङ्ग [राजा] प्रियव्रतके सभी यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ १४-१५॥

तस्यैव दक्षिणे देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
सर्वपापप्रशमनं गौतमेशं च नामतः॥ १६
तेन दृष्टेन देवेशि सामवेदफलं लभेत्।
तस्यैव दक्षिणे देवि विभाण्डेश्वरसंज्ञितम्॥ १७

हे देवि! उसीके दक्षिणमें समस्त पापोंका नाश करनेवाला गौतमेश नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य सामवेदका फल प्राप्त करता है। हे देवि! उसीके दक्षिणमें विभाण्डेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है॥ १६-१७॥

ऋष्यशृङ्गेश्वरं नाम तस्य दक्षिणतः स्थितम्।
तस्यैव पूर्वतो देवि ब्रह्मेश्वरमिति स्मृतम्॥ १८

उसके दक्षिणमें ऋष्यशृंगेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उसीके पूर्वमें ब्रह्मेश्वरलिङ्ग बताया गया है॥ १८॥

ब्रह्मेश्वराच्च कोणेन पिशाचेश्वरसंज्ञितम्।
पश्चिमाभिमुखं देवि पर्जन्येश्वरनामतः॥ १९

ब्रह्मेश्वरके कोणमें पिशाचेश्वर नामक लिङ्ग है। हे देवि! पर्जन्येश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है॥ १९॥

पर्जन्येश्वरनामानं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
पर्जन्येश्वरपूर्वेण नाम्ना तु नहुषेश्वरम्॥ २०

नहुषेश्वरपूर्वेण देवदेवी च तिष्ठति।
विशालाक्षीति विख्याता भक्तानां तु फलप्रदा॥ २१

तस्यैव दक्षिणे भागे जरासन्धेश्वरं स्थितम्।
चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं दृष्ट्वा देवि फलप्रदम्॥ २२

तस्यैव दक्षिणे देवि भोगदा सर्वदेहिनाम्।
भोगा ललितका देवि सर्वसिद्धिप्रदायिका॥ २३

जरासन्धेश्वरस्याग्रे लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
हिरण्याक्षेश्वरं नाम हिरण्यफलदायकम्॥ २४

तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं ययातीश्वरनामतः।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम्॥ २५

तस्यैव पश्चिमे भागे ब्रह्मेशस्य समीपतः।
पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं दृष्ट्वा वेदफलं लभेत्॥ २६

अगस्त्यस्य समीपे तु मुखलिङ्गं तु तिष्ठति।
विश्वावसुस्तु गन्धर्वो लिङ्गं स्थापितवान् पुरा॥ २७

अगस्त्येश्वरपूर्वेण मुण्डेशो नाम नामतः।
पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं वीरसिद्धिप्रदं नृणाम्॥ २८

तस्यैव दक्षिणे देवि विधिस्तिष्ठति पार्वति।
विधिना स्थापितं लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ २९

विधीश्वराद्दक्षिणेन तीर्थं सर्वत्र विश्रुतम्।
दशाश्वमेधिकं नाम लिङ्गं तत्र स्वयं स्थितम्॥ ३०

तं दृष्ट्वा मानवो देवि अश्वमेधफलं लभेत्।
दशाश्वमेधाच्चोत्तरतो मातरस्तत्र संस्थिताः॥ ३१

तासां मुखे तु तत्कुण्डं तिष्ठते वरवर्णिनि।
तत्र स्नानं नरः कुर्यान्नारी वा पुरुषोऽपि वा॥ ३२

पर्जन्येश्वर नामक लिङ्ग भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। पर्जन्येश्वरके पूर्वमें नहुषेश्वर नामक लिङ्ग है। नहुषेश्वरके पूर्वमें देव-देवी स्थित हैं, विशालाक्षी नामसे विख्यात वे [सभी] भक्तोंको फल प्रदान करनेवाली हैं॥ २०-२१॥

उसीके दक्षिणभागमें जरासन्धेश्वर नामक चतुर्मुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उस लिङ्गका दर्शन करनेसे वह [समस्त] फल प्रदान करता है॥ २२॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें सभी प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाली भोगा ललितका स्थित हैं, हे देवि! वे सभी सिद्धियाँ देनेवाली हैं॥ २३॥

जरासन्धेश्वरके आगे सुवर्णका फल प्रदान करनेवाला हिरण्याक्षेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २४॥

उसीके दक्षिणमें ययातीश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग विद्यमान है, वह लिङ्ग सभी कामनाओंका फल देनेवाला है॥ २५॥

उसीके पश्चिमभागमें ब्रह्मेशके समीप पश्चिमकी ओर मुखवाला एक लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य वेदोंका फल प्राप्त करता है॥ २६॥

अगस्त्यके समीपमें एक मुखलिङ्ग स्थित है, पूर्वकालमें गन्धर्व विश्वावसुने उस लिङ्गको स्थापित किया था॥ २७॥

अगस्त्येश्वरके पूर्वमें मुण्डेश नामसे प्रसिद्ध पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग विद्यमान है, वह लिङ्ग मनुष्योंको वीरसिद्धि प्रदान करनेवाला है॥ २८॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें विधि [लिङ्ग] स्थित है, हे पार्वति! विधि (ब्रह्मा)-के द्वारा स्थापित वह लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है॥ २९॥

विधीश्वरके दक्षिणमें सर्वत्र प्रसिद्ध एक तीर्थ है, वहाँपर दशाश्वमेधिक नामक लिङ्ग स्वयं स्थित है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य अश्वमेधका फल प्राप्त करता है॥ ३०$^{1}/_{2}$॥

दशाश्वमेधके उत्तरमें वहाँपर मातृकाएँ स्थित हैं, हे वरवर्णिनि! उनके मुखमें एक कुण्ड स्थित है। वहाँ जो

ईप्सितं फलमाप्नोति मातॄणां च प्रसादतः।
अगस्त्येशाद्दक्षिणतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ३३

पुलस्त्येश्वरनामानं सर्वारोग्यविवर्धनम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गमन्यच्च तिष्ठति॥ ३४

पुष्पदन्तेश्वरं नाम सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
तस्यैवाग्रे तु कोणे तु लिङ्गानि सुमहान्ति च॥ ३५

देवर्षिगणपुष्टानि सर्वसिद्धिकराणि च।
तस्यैव पूर्वदिग्भागे महदाश्चर्यदायकम्॥ ३६

पञ्चोपचारपूजायां स्वप्नसिद्धिं करिष्यति।
लिङ्गं सिद्धेश्वरं नाम पूर्वाभिमुखसंस्थितम्॥ ३७

मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष हो, स्नान करता है, वह मातृकाओंकी कृपासे वांछित फल प्राप्त करता है। अगस्त्येशके दक्षिणमें सभी प्रकारके आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला पुलस्त्येश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ३१—३३$^{1}/_{2}$॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला पुष्पदन्तेश्वर नामक एक अन्य लिङ्ग स्थित है। उसीके आगे कोणमें महान् लिङ्ग विद्यमान हैं; वे देवर्षियोंके द्वारा स्थापित किये गये हैं और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ देनेवाले हैं। उसीके पूर्व दिशाभागमें महान् आश्चर्यजनक लिङ्ग विद्यमान हैं। सिद्धेश्वर नामक पूर्वाभिमुख स्थित वह लिङ्ग पंचोपचारपूजाके द्वारा स्वप्नसिद्धि प्रदान करता है॥ ३४—३७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

हरिश्चन्द्रेश्वर, नैर्ऋतेश्वर, अम्बरीषेश्वर, शंकुकर्णेश्वर, कपर्दीश्वर, अंगारेश्वर तथा छागलेश्वर आदि लिङ्गोंकी महिमाका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि हरिश्चन्द्रेश्वरं शुभम्।
यत्र सिद्धो महात्मा वै हरिश्चन्द्रो महाबलः॥ १

तं दृष्ट्वा मानवो देवि रुद्रस्य पदमाप्नुयात्।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं स्वर्गलोकप्रदायकम्॥ २

हरिश्चन्द्रेश्वराद्देवि अन्यल्लिङ्गं तु पश्चिमे।
पूर्वामुखं तु तं देवि नाम्ना वै नैर्ऋतेश्वरम्॥ ३

तस्य सन्दर्शनाद्देवि कैवल्यं ज्ञानमाप्नुयात्।
तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं पूर्वामुखमवस्थितम्॥ ४

नाम्ना ह्याङ्गिरसेशं तद्वैराग्यसुखदायकम्।
तस्यैव दक्षिणे देवि क्षेमेश्वरमनुत्तमम्॥ ५

तस्य दक्षिणदिग्भागे केदारं नाम विश्रुतम्।
तं दृष्ट्वा मनुजो देवि रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥ ६

ईश्वर बोले—अब मैं हरिश्चन्द्रेश्वर नामक अन्य शुभ लिङ्गका वर्णन करूँगा, जहाँपर महाबली हरिश्चन्द्र सिद्ध महात्मा हुए थे॥ १॥

हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य रुद्रका पद प्राप्त करता है। वह पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्वर्गलोक प्रदान करनेवाला है॥ २॥

हे देवि! हरिश्चन्द्रेश्वरके पश्चिममें दूसरा पूर्वाभिमुख एक लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह नैर्ऋतेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। हे देवि! उसके दर्शनसे मनुष्य कैवल्यज्ञान प्राप्त करता है। उसीके दक्षिणमें आंगिरसेश नामसे प्रसिद्ध पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह वैराग्यसुख प्रदान करनेवाला है॥ ३-४$^{1}/_{2}$॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें अत्युत्तम क्षेमेश्वर [लिङ्ग] विद्यमान है। उसके दक्षिण दिशाभागमें केदार नामक प्रसिद्ध लिङ्ग है। हे देवि! उसका दर्शन

केदाराद्दक्षिणे चैव लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
नीलकण्ठेति नामानं सुरलोकप्रदायकम्॥ ७

तस्यैव वायवे कोणे अम्बरीषेश्वरं शुभम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गं वै दक्षिणामुखम्॥ ८

नाम्ना कालञ्जरं देवं सर्वपातकनाशनम्।
तस्यैव दक्षिणे भागे लोलार्को नाम वै रविः॥ ९

तस्य दर्शनमात्रेण सूर्यलोकमवाप्नुयात्।
लोलार्कात् पश्चिमे भागे दुर्गादेवी च तिष्ठति॥ १०

मानवानां हितार्थाय कूटे क्षेत्रस्य दक्षिणे।
दुर्गायाः पश्चिमे देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ११

असितेन च तद्देवि भक्त्या वै संप्रतिष्ठितम्।
शुष्कनद्यास्तु नाम्ना वै शुष्केश्वरमिति स्मृतम्॥ १२

शुष्केश्वरात् पश्चिमेन नाम्ना तु जनकेश्वरम्।
जनकेन महाभागे भक्त्या चापि प्रतिष्ठितम्॥ १३

पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं दर्शनादव्यथः शुभे।
तस्यैव चोत्तरे भागे नातिदूरे यशस्विनि॥ १४

शङ्कुकर्णेश्वरं नाम लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति।
तस्य दर्शनमात्रेण व्रतसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ १५

शुष्केश्वराच्चोत्तरेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
सिद्धेश्वरेति नामानं कुण्डस्यैव तटस्थितम्॥ १६

तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा सिद्धेश्वरं तु वै।
सर्वासामेव सिद्धीनां पारं गच्छति मानवः॥ १७

वायव्ये तु दिशाभागे शङ्कुकर्णेश्वरस्य तु।
माण्डव्येशमिति ख्यातं सुरसिद्धैस्तु वन्दितम्॥ १८

तस्य चैव समीपे तु स्वयं देवश्च तिष्ठति।
गणैः परिवृतो देवि देव्या सह महाप्रभुः॥ १९

द्वारे स्वे तिष्ठते देवि स्वयं क्षेत्रं च रक्षति।
देवस्य चोत्तरे भागे नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ २०

मुखलिङ्गं तु तत्रैव लिङ्गं पूर्वामुखं शुभे।
तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे छागलेश्वरसंज्ञितम्॥ २१

करके मनुष्य रुद्रका अनुचर हो जाता है॥ ५-६॥

केदारके ही दक्षिणमें देवलोक प्रदान करनेवाला नीलकण्ठ नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ७॥

उसीके वायव्य कोणमें अम्बरीषेश्वर नामक शुभ लिङ्ग स्थित है। उसके दक्षिण दिशाभागमें कालंजर नामक दक्षिणाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ८½॥

उसीके दक्षिण भागमें लोलार्क नामक सूर्यदेव विद्यमान हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सूर्यलोक प्राप्त करता है। लोलार्कके पश्चिमभागमें तथा क्षेत्रके दक्षिणमें कूटपर मनुष्योंके हितके लिये दुर्गादेवी स्थित हैं। हे देवि! दुर्गाके पश्चिममें पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह लिङ्ग महात्मा असितके द्वारा भक्तिपूर्वक स्थापित किया गया है॥ ९—११½॥

शुष्क नदीके नामसे शुष्केश्वर लिङ्ग भी बताया गया है। शुष्केश्वरके पश्चिममें जनकेश्वर नामक लिङ्ग विद्यमान है। हे महाभागे! जनकके द्वारा भक्तिपूर्वक उसे स्थापित किया गया है। हे शुभे! वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है, उसके दर्शनसे मनुष्य व्यथारहित हो जाता है॥ १२-१३½॥

हे यशस्विनि! उसीके उत्तरभागमें समीपमें वहींपर शंकुकर्णेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके व्रतकी सिद्धि हो जाती है॥ १४-१५॥

शुष्केश्वरके उत्तरमें सिद्धेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह कुण्डके तटपर ही स्थित है। वहाँपर कुण्डमें स्नान करके तथा सिद्धेश्वरका दर्शन करके मनुष्य समस्त सिद्धियोंके पार चला जाता है॥ १६-१७॥

शंकुकर्णेश्वरके वायव्य दिशाभागमें देवताओं तथा सिद्धोंसे वन्दित माण्डव्येश नामक लिङ्ग विद्यमान है॥ १८॥

उसके समीपमें स्वयं देव [शिवजी] स्थित हैं। हे देवि! वे महाप्रभु [वहाँ] गणों तथा देवी [पार्वती]-से घिरे रहकर अपने द्वारपर विराजमान रहते हैं और स्वयं क्षेत्रकी रक्षा करते हैं॥ १९½॥

देवके उत्तरभागमें समीपमें ही वहाँपर एक मुख-लिङ्ग है, हे शुभे! वह लिङ्ग पूर्वाभिमुख है। उसीके उत्तरभागमें छागलेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग

पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
अन्यदायतनं देवि पश्चिमेन यशस्विनि॥ २२

कपर्दीश्वरनामानमुत्तमं सर्वदायकम्।
तस्य पूर्वेण सुश्रोणि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ २३

हरितेश्वरनामानं सर्वपापक्षयङ्करम्।
कात्यायनेश्वरं नाम तस्य दक्षिणतः स्थितम्।
तेन दृष्टेन मनुजः सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २४

अन्यत्तस्यैव पार्श्वे तु अङ्गारेश्वरसंज्ञितम्।
तडागं चापि तत्रस्थमङ्गारेश्वरसंज्ञितम्॥ २५

तस्य दक्षिणदिग्भागे नातिदूरे व्यवस्थितम्।
मुकुरेश्वरनामानं सर्वयात्राफलप्रदम्॥ २६

पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं कुण्डस्य पुरतः स्थितम्।
तस्य कुण्डस्य पार्श्वे तु छागलेश्वरसंज्ञितम्॥ २७

तस्य दर्शनमात्रेण योगैश्वर्यं प्रवर्तते।
अन्यानि सन्ति लिङ्गानि शतशोऽथ सहस्रशः॥ २८

न मया तानि चोक्तानि बहुत्वान्नामधेयतः।
सप्तकोट्यस्तु लिङ्गानि अस्मिन् स्थाने स्थिता भुवि॥ २९

तेषां दर्शनमात्रेण ज्ञानं चोत्पद्यते क्षणात्।
उद्देशमात्रं कथितं मया तुभ्यं वरानने॥ ३०

न शक्यं विस्तराद्वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि।
एतानि सिद्धलिङ्गानि कूपाः पुण्या ह्रदास्तथा॥ ३१

वाप्यो नद्योऽथ कुण्डानि मया ते परिकीर्तिताः।
एतेषु चैव यः स्नानं करिष्यति समाहितः॥ ३२

लिङ्गानि स्पर्शयित्वा च संसारे न विशेत् पुनः।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि अन्तरिक्षचराणि च॥ ३३

तेषां मध्ये तु ये श्रेष्ठा मया ते कथिता शुभे।
तीर्थयात्रा वरारोहे कथिता पापनाशिनी॥ ३४

येन चैषा कृता देवि सोऽवश्यं मुक्तिभाग्भवेत्॥ ३५

स्थित है। वह सभी सिद्धियाँ देनेवाला है। हे देवि! उसके पश्चिममें अन्य आयतन स्थित है। हे यशस्विनि! कपर्दीश्वर नामक वह उत्तम आयतन (लिङ्ग) सब कुछ प्रदान करनेवाला है॥ २०—२२$^{1}/_{2}$॥

हे सुश्रोणि! उसके पूर्वमें सभी पापोंका नाश करनेवाला हरितेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसके दक्षिणमें कात्यायनेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनसे मनुष्य समस्त यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ २३-२४॥

उसीके पासमें अंगारेश्वर नामक अन्य लिङ्ग विद्यमान है और वहींपर अंगारेश्वर नामक तडाग भी स्थित है॥ २५॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें समीपमें ही सभी यात्राओंका फल प्रदान करनेवाला मुकुरेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। पश्चिमाभिमुख वह लिङ्ग कुण्डके सामने स्थित है। उस कुण्डके पासमें छागलेश्वर नामक लिङ्ग विद्यमान है, उसके दर्शनमात्रसे योगैश्वर्य प्राप्त होता है। वहाँपर अन्य सैकड़ों-हजारों लिङ्ग स्थित हैं, बहुत-से होनेके कारण नाम लेकर मैंने उन्हें नहीं बताया। पृथ्वीपर इस स्थानमें सात करोड़ लिङ्ग हैं, उनके दर्शनमात्रसे क्षणभरमें ज्ञान उत्पन्न हो जाता है॥ २६—२९$^{1}/_{2}$॥

हे वरानने! मैंने संक्षेपमें आपको बताया है, सौ करोड़ वर्षोंमें भी विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता है। मैंने आपसे इन सिद्धलिङ्गों, कूपों, पवित्र ह्रदों, वापियों, नदियों तथा कुण्डोंका वर्णन कर दिया। जो एकाग्रचित्त होकर इन [कुण्ड आदि]-में स्नान करता है तथा लिङ्गोंका स्पर्श करता है, वह संसारमें पुनः प्रवेश नहीं करता है॥ ३०—३२$^{1}/_{2}$॥

हे शुभे! पृथ्वीपर तथा अन्तरिक्षमें जो तीर्थ हैं, उनमें जो श्रेष्ठ हैं, उनका वर्णन मैंने कर दिया। हे वरारोहे! मैंने पापोंका नाश करनेवाली तीर्थयात्राको भी बता दिया, हे देवि! जिसने इसे कर लिया, वह अवश्य ही मुक्तिका भागी होता है॥ ३३—३५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

चतुर्दशायतन, अष्टायतन तथा पंचायतनयात्राका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि महाभाग्यं वरानने।
चतुर्दशायतनं कृत्वा अष्टायतनमेव च॥ १

पञ्चायतनमेवं तु ललिता च विनायकः।
नवदुर्गास्तथा प्रोक्ता एतत् कृत्यं वरानने॥ २

रहस्यमेतत् कथितं न देयं यस्य कस्यचित्।
शैलेशं प्रथमं दृष्ट्वा स्नात्वा वै वरणां नदीम्॥ ३

स्नानं तु सङ्गमे कृत्वा दृष्ट्वा वै सङ्गमेश्वरम्।
स्वर्लीने तु कृतस्नानो दृष्ट्वा स्वर्लीनमीश्वरम्॥ ४

मन्दाकिन्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम्।
हिरण्यगर्भे स्नातस्तु दृष्ट्वा चैव तु ईश्वरम्॥ ५

मणिकर्ण्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैशानमीश्वरम्।
तस्मिन् कूप उपस्पृश्य दृष्ट्वा गोप्रेक्षमीश्वरम्॥ ६

कपिलायां ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा वै वृषभध्वजम्।
उपशान्तस्य देवस्य दक्षिणे कूपमुत्तमम्॥ ७

तस्मिन् कूपे उपस्पृश्य दृष्ट्वोपशान्तमीश्वरम्।
पञ्चचूडाह्रदे स्नात्वा ज्येष्ठस्थानं ततोऽर्चयेत्॥ ८

चतुःसमुद्रकूपे तु स्नात्वा देवं ततोऽर्चयेत्।
देवस्याग्रे तु कूपस्य तत्रोपस्पर्शने कृते॥ ९

ततोऽर्चयेत देवेशं शुद्धेश्वरमतः परम्।
दण्डखाते नरः स्नात्वा व्यादेशं तु ततोऽर्चयेत्॥ १०

शौनकेश्वरकुण्डे तु स्नानं कृत्वा ततोऽर्चयेत्।
जम्बुकेश्वरनामानं दृष्ट्वा चैव यशस्विनि॥ ११

दृष्ट्वा न जायते मर्त्यः संसारे दुःखसागरे।
प्रतिपत्प्रभृति देवेशि यावत् कृष्णचतुर्दशीम्॥ १२

ईश्वर बोले—हे वरानने! अब मैं अन्य महाभाग्यप्रद लिङ्गोंका वर्णन करूँगा। चतुर्दशायतन, अष्टायतन, पंचायतन, ललिता, विनायक तथा जो नौ दुर्गा हैं—इन सबको मैं बता चुका हूँ। हे वरानने! इस यात्राको करना चाहिये और इस बताये गये रहस्यको जिस-किसीसे प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ १-२$^{1}/_{2}$॥

सर्वप्रथम शैलेशका दर्शन करके तथा वरणानदीमें स्नान करके पुनः संगममें स्नानकर तथा संगमेश्वरका दर्शन करके, इसके बाद स्वर्लीनमें स्नान करके तथा स्वर्लीनेश्वरका दर्शन करके पुनः मन्दाकिनीमें स्नान करके तथा मध्यमेश्वरका दर्शन करके पुनः हिरण्यगर्भमें स्नान करके तथा ईश्वरका दर्शन करके इसके बाद मणिकर्णीमें स्नान करके तथा भगवान् ईशानका दर्शन करके पुनः [वहाँपर] उस कूपमें स्नान करके तथा गोप्रेक्षेश्वरका दर्शन करके, पुनः कपिलाह्रदमें स्नान करके तथा वृषभध्वजका दर्शन करके उपशान्तदेवके दक्षिणमें स्थित जो उत्तम कूप है, उस कूपमें स्नान करके तथा उपशान्तेश्वरका दर्शन करनेके अनन्तर पंचचूडाह्रदमें स्नान करके मनुष्यको ज्येष्ठस्थानका अर्चन करना चाहिये॥ ३—८॥

इसके बाद चतुःसमुद्रकूपमें स्नान करके देव (लिङ्ग)-का दर्शन-पूजन करना चाहिये। देवके आगे स्थित कूपके जलसे स्नान करनेके बाद देवेश शुद्धेश्वरका अर्चन करना चाहिये। इसके पश्चात् दण्डखातमें स्नान करके मनुष्यको व्यादेशका पूजन करना चाहिये॥ ९-१०॥

पुनः शौनकेश्वरकुण्डमें स्नान करके उस लिङ्गका अर्चन करना चाहिये। हे यशस्विनि! जम्बुकेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य दुःखसागररूपी संसारमें पुनः जन्म नहीं लेता है। हे देवेशि! हे शुभे! प्रतिपदासे आरम्भ करके कृष्णचतुर्दशीतक क्रमसे इस महान्

एतत्क्रमेण कर्तव्यं महदायतनं शुभे।
अतः परं प्रवक्ष्यामि अष्टायतनमुत्तमम्॥ १३

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि लाङ्गलीशं ततो व्रजेत्।
तं दृष्ट्वा तु ततो देवि आषाढीशं ततोऽर्चयेत्॥ १४

दृष्ट्वा चाषाढिनं देवि भारभूतं ततो व्रजेत्।
तं दृष्ट्वा तु ततो देवं गच्छेद्वै त्रिपुरान्तकम्॥ १५

तं दृष्ट्वापि ततो देवि नकुलीशं ततो व्रजेत्।
दक्षिणे नकुलीशस्य त्र्यम्बकं च ततो व्रजेत्॥ १६

अष्टायतनमेवं हि मया ते परिकीर्तितम्।
अष्टायतनमेतद्धि करिष्यन्ति हि ये नराः॥ १७

ते मृतापि बहिः क्षेत्रे रुद्रलोकस्य भाजनाः॥ १८

ईश्वर उवाच

पूर्वं चैव मया देवि पञ्चायतनमुत्तमम्।
रोचते मे सदा वासः पञ्चायतन उत्तमे॥ १९

एषां दिगुत्तरा देवि वाराणस्यां सदा प्रिये।
मम चोत्तरतो नित्यमस्मिन् स्थाने विशेषतः॥ २०

एकान्तवासिनो विप्रा भस्मनिष्ठा दृढव्रताः।
तेषां तु चोत्तमं स्थानं तद्वदन्ति च केचन॥ २१

दिव्या हि सा परा मूर्तिरोङ्कारे ह स्थितः सदा।
उत्पत्तिस्थितिकालेऽहं तस्मिन्नायतने स्थितः॥ २२

एवं च यो विजानाति न स पापेन लिप्यते।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिः सत्यं नान्यतश्शुभे॥ २३

शीघ्रं तत्र च संयातु यदीच्छेन्मामकं पदम्।
एवं ते कथितं देवि पुनर्विस्तरतो मया॥ २४

ईश्वर उवाच

अविमुक्तं च स्वर्लीनं तथा मध्यमकं शुभम्।
एतत् त्रिकण्टकं नाम मृत्युकालेऽमृतप्रदम्॥ २५

चतुर्दशायतनको सम्पन्न करना चाहिये॥ ११-१२½॥

अब मैं उत्तम अष्टायतनको बताऊँगा। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्यको लांगलीशके स्थानमें जाना चाहिये। हे देवि! उसका दर्शन करनेके बाद आषाढीशका अर्चन करना चाहिये॥ १३-१४॥

हे देवि! आषाढीशका दर्शन करनेके बाद भारभूतेश्वरके पास जाना चाहिये। उसका दर्शन करके त्रिपुरान्तकदेवके पास जाना चाहिये॥ १५॥

हे देवि! उसका दर्शन करके नकुलीशके पास जाना चाहिये। इसके बाद नकुलीशके दक्षिणमें स्थित त्र्यम्बकके पास जाना चाहिये॥ १६॥

[हे देवि!] इस प्रकार मैंने आपको अष्टायतनके विषयमें बता दिया। जो मनुष्य इस अष्टायतनका दर्शन-पूजन करेंगे, वे इस क्षेत्रके बाहर मरनेपर भी रुद्रलोकके भाजन होंगे॥ १७-१८॥

ईश्वर बोले—हे देवि! मैं पहले ही उत्तम पंचायतनका वर्णन कर चुका हूँ। उत्तम पंचायतनमें निवास करना मुझे अच्छा लगता है॥ १९॥

हे देवि! हे प्रिये! वाराणसीमें इनके उत्तर दिशामें और मेरे उत्तरमें इस स्थानपर भस्म धारण करके दृढव्रतमें स्थित होकर विप्रलोग सदा एकान्तवास करते हैं। कुछ लोग उसे उनका उत्तम स्थान बताते हैं॥ २०-२१॥

वह मूर्ति दिव्य तथा श्रेष्ठ है, मैं सदा उस ओंकारेश्वरमें स्थित हूँ। उत्पत्ति तथा स्थितिके समय मैं उस आयतनमें स्थित रहता हूँ॥ २२॥

जो इस बातको जानता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता है। हे शुभे! यह सत्य है, सत्य है, सत्य है—तीन बार सत्य है, यह अन्यथा नहीं है॥ २३॥

यदि कोई मेरे लोककी इच्छा करता हो, तो शीघ्र ही वहाँ जाय। हे देवि! इस प्रकार मैंने विस्तारपूर्वक फिरसे आपको यह बता दिया॥ २४॥

ईश्वर बोले—अविमुक्तेश्वर, स्वर्लीनेश्वर तथा शुभ मध्यमेश्वर—ये त्रिकण्टक नामवाले हैं तथा

कारणं तस्य क्षेत्रस्य मया ते कथितं शुभे।
इयं वाराणसी पुण्या श्रेष्ठा पाशुपती स्थली।
सर्वेषां चैव जन्तूनां हेतुर्मोक्षस्य सुन्दरि॥ २६

अविमुक्तं च स्वर्लीनमोङ्कारं चण्डमीश्वरम्।
मध्यमं कृत्तिवासं च षडङ्गमीश्वरं स्मृतम्॥ २७

अविमुक्ते महाक्षेत्रे गुह्यमेतत्परं मम।
सोपदेशेन ज्ञातव्यं यदीच्छेत् परमं पदम्॥ २८

एतद्रहस्यमाहात्म्यं न देयं यस्य कस्यचित्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्राकालं च सर्वदा॥ २९

चैत्रमासे तु देवैस्तु यात्रेयं च कृता शुभा।
तस्यैव कामकुण्डे तु स्नानपूजनतत्परैः॥ ३०

वैशाखे दैत्यराजैस्तु यात्रेयं च कृता पुरा।
विमलेश्वरकुण्डे तु स्नानपूजनतत्परैः॥ ३१

ज्येष्ठमासेऽपि सिद्धैस्तु यात्रेयं च कृता पुरा।
रुद्रवासस्य कुण्डे तु स्नानपूजनतत्परैः॥ ३२

आषाढे चाऽपि गन्धर्वैर्यात्रेयं च कृता मम।
श्रिया देव्यास्तु कुण्डस्थैः स्नानपूजनतत्परैः॥ ३३

विद्याधरैस्तु यात्रेयं श्रावणे मासि तत्परैः।
लक्ष्मीकुण्डस्य संस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३४

पितृभिश्चाऽपि यात्रेयमाश्विने मासि तत्परैः।
कपिलाह्रदसंस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३५

ऋषिभिश्चापि यात्रेयं कार्तिके मासि तत्परैः।
मार्कण्डेयह्रदस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३६

विद्याधरैश्च यात्रेयं मासि मार्गशिरे कृता।
कपालमोचनस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३७

गुह्यकैश्चैव यात्रेयं पुष्यमासे तु तत्परैः।
पिशाचैश्चैव यात्रेयं माघमासे च तत्परैः॥ ३८

मृत्युकालमें अमृत (अमरत्व) प्रदान करनेवाले हैं॥ २५॥

हे शुभे! मैंने उस क्षेत्रके महत्त्वका कारण आपको बता दिया। यह वाराणसी पुण्यमयी, श्रेष्ठ तथा पशुपतिके भक्तोंकी स्थली है और हे सुन्दरि! यह सभी प्राणियोंके मोक्षकी हेतु है॥ २६॥

अविमुक्तेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, ओंकारेश्वर, चण्डेश्वर, मध्यमेश्वर, कृत्तिवासेश्वर—यह षडंग लिङ्ग कहा गया है॥ २७॥

अविमुक्त महाक्षेत्रमें यह मेरा परम गुह्य स्थान है, यदि कोई परम पद चाहता है, तो उसे उपदेशपूर्वक इसे जानना चाहिये॥ २८॥

इस रहस्यमय माहात्म्यको जिस-किसीसे भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये। अब मैं यात्राकालका वर्णन करूँगा॥ २९॥

उसीके कामकुण्डमें स्नान तथा पूजनमें तत्पर देवताओंने चैत्रमासमें इस शुभ यात्राको किया था॥ ३०॥

विमलेश्वर कुण्डके स्नान-पूजनमें तत्पर दैत्यराजोंने वैशाखमासमें इस यात्राको पूर्वकालमें किया था॥ ३१॥

रुद्रवासकुण्डके स्नान-पूजनमें तत्पर सिद्धोंने ज्येष्ठमासमें पूर्वकालमें इस यात्राको किया था॥ ३२॥

श्रीदेवीके कुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर रहनेवाले गन्धर्वोंके द्वारा आषाढ़मासमें मेरी यह यात्रा की गयी थी॥ ३३॥

लक्ष्मीकुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर विद्याधरोंने श्रावण महीनेमें इस यात्राको किया था॥ ३४॥

कपिलाह्रदमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर पितरोंने आश्विनमासमें इस यात्राको किया था। मार्कण्डेयह्रदमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर ऋषियोंने कार्तिकमासमें यह यात्रा की थी॥ ३५-३६॥

कपालमोचनमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर विद्याधरोंने मार्गशीर्षमासमें यह यात्रा की थी। गुह्यकोंने समाहित होकर पौषमासमें यह यात्रा की थी। पिशाचोंने समाहित होकर माघमासमें इस यात्राको किया था॥ ३७-३८॥

धनदेश्वरकुण्डस्थैः स्नानपूजनतत्परैः।
यक्षेशैश्चापि यात्रेयं माघमासे च तत्परैः॥ ३९

कोटितीर्थे तु संस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः।
पिशाचैश्चैव यात्रेयं फाल्गुने मासि तत्परैः॥ ४०

धनदेश्वरकुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर यक्षेशोंने भी समाहित होकर माघमासमें यह यात्रा की थी। कोटितीर्थमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर पिशाचोंने समाहित होकर फाल्गुनमासमें इस यात्राको किया था॥ ३९-४०॥

गोकर्णकुण्डसंस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः।
पिशाचैस्तु यदा यस्मिन् फाल्गुनस्य चतुर्दशीम्॥ ४१

तेन सा प्रोच्यते देवि पिशाची नाम विश्रुता।
अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रायां निष्कृतिः परा॥ ४२

गोकर्णकुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर पिशाचोंने समाहित होकर फाल्गुनमासकी चतुर्दशी तिथिको यह यात्रा की थी, इसलिये हे देवि! वह प्रसिद्ध पिशाची नामवाली कही जाती है। अब मैं यात्रामें श्रेष्ठ निष्कृतिके विषयमें बताऊँगा॥ ४१-४२॥

उदकुम्भास्तु दातव्या मिष्टान्नेन समन्विताः।
तेन देवि तदा प्राप्तं पूर्वोक्तं फलमेव च॥ ४३

हे देवि! [यात्रामें] मिष्टान्नसे युक्त उदकुम्भोंका दान करना चाहिये, उससे पूर्वकथित [समस्त] फल प्राप्त होता है॥ ४३॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रायां च वरानने।
शुक्लपक्षे तृतीयायां तव यात्रा महाफला॥ ४४

हे वरानने! अब मैं यात्राके लिये तिथिको बताऊँगा, शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें आपकी यात्रा महाफल प्रदान करती है॥ ४४॥

यत्र गौरी तु द्रष्टव्या तां च शृणु वरानने।
स्नानं कृत्वा तु गन्तव्यं गोप्रेक्षे तु यशस्विनि॥ ४५

अहनि कालिका देवी अर्चितव्या प्रयत्नतः।
ज्येष्ठस्थाने ततो गौरी अर्चितव्या प्रयत्नतः॥ ४६

हे वरानने! जहाँ गौरीका दर्शन होता है, उस [यात्रा]-को सुनो। हे यशस्विनि! स्नान करके गोप्रेक्षमें जाना चाहिये और दिनमें प्रयत्नपूर्वक कालिकादेवीकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद ज्येष्ठस्थानमें प्रयत्नपूर्वक गौरीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४५-४६॥

तस्मात् स्थानात्तु गन्तव्यमविमुक्तस्य चोत्तरे।
तत्र देवी सदा गौरी पूजितव्या च भक्तितः॥ ४७

पुनः उस स्थानसे अविमुक्तके उत्तरमें जाना चाहिये और वहाँ सदा भक्तिपूर्वक देवी गौरीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४७॥

अन्या वापि परा प्रोक्ता संवर्तललिता शुभा।
द्रष्टव्या चापि सा देवी सर्वकामफलप्रदा॥ ४८

सर्वकामानवाप्नोति यदि ध्यायेत मानवः।

श्रेष्ठ तथा शुभ अन्य संवर्त-ललिता भी बतायी गयी हैं, समस्त कामनाओंका फल देनेवाली उन देवीका भी दर्शन करना चाहिये। यदि मनुष्य उनका ध्यान करता है, तो वह सभी वांछित फल प्राप्त करता है॥ ४८$^{1}/_{2}$॥

ततस्तु भोजयेद्विप्रान् शिवभक्तान् शुचिव्रतान्॥ ४९

वासैः सदक्षिणैश्चैव यथार्हमतिपुष्कलैः।
पञ्चगौरीं तु यः कृत्वा भक्त्या देवि समाहितः॥ ५०

सर्वांश्चैव रसान् गन्धान् गौरीमुद्दिश्य ब्राह्मणे॥ ५१

तत्पश्चात् शुद्ध व्रतवाले शिवभक्त विप्रोंको अपने सामर्थ्यके अनुसार पर्याप्त दक्षिणा तथा वस्त्रके साथ भोजन कराना चाहिये। हे देवि! जो समाहितचित्त होकर पंचगौरीका दर्शन-पूजन करके गौरीको उद्देश्यकर

उत्तमं श्रेय आप्नोति सौभाग्येन समन्वितम्।
विनायकान् प्रवक्ष्यामि अस्य क्षेत्रस्य विघ्नदान्॥ ५२

ढुण्ढिं तु प्रथमं दृष्ट्वा तथा कोणविनायकम्।
देव्या विनायकं चैव गोप्रेक्षे हस्तिनं स्मृतम्॥ ५३

विनायकं तथैवान्यं सिन्दूरं नाम विश्रुतम्।
चतुर्थो देवि द्रष्टव्य एवं पञ्च विनायकाः॥ ५४

लड्डुकाश्च प्रदातव्या एतानुद्दिश्य ब्राह्मणे।
एतेन चैव धर्मेण सिद्धिमान् जायते नरः॥ ५५

अतः परं प्रवक्ष्यामि चण्डिकाः क्षेत्ररक्षिकाः।
दक्षिणे रक्षते दुर्गा नैर्ऋते चोत्तरेश्वरी॥ ५६

अङ्गारेशी पश्चिमे च वायव्ये भद्रकालिका।
उत्तरे भीष्मचण्डी च महामुण्डा च सा ततः॥ ५७

ऊर्ध्वकेशी समायुक्ता शाङ्करी सर्वतः स्मृता।
ऊर्ध्वकेशी च आग्नेय्यां चित्रघण्टाथ मध्यतः॥ ५८

एताश्च चण्डिका देवि योऽत्र द्रक्ष्यति मानवः।
तस्य तुष्टाश्च ताः सर्वाः क्षेत्रं रक्षन्ति तत्पराः॥ ५९

विघ्नं कुर्वन्ति सततं पापानां देवि सर्वदा।
तस्माच्चैव सदा पूज्याश्चण्डिकाः सविनायकाः॥ ६०

यदीच्छेत् सततं देवि वाराणस्यां शुभां स्थितिम्।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तस्मिन् क्षेत्रे सुरेश्वरि॥ ६१

तिस्रो नद्यस्तु तत्रस्था वहन्ति च शुभोदकाः।
यासां दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या निवर्तते॥ ६२

एका पितामहस्रोता मन्दाकिनी तथापरा।
मत्स्योदरी तृतीया च एतास्तिस्रस्तु पुण्यदाः॥ ६३

ब्राह्मणको समस्त रस तथा गन्ध समर्पित करता है, वह सौभाग्ययुक्त उत्तम कल्याणकी प्राप्ति करता है। अब मैं इस क्षेत्रके विघ्नदायक विनायकोंका वर्णन करूँगा॥ ४९—५२॥

हे देवि! सर्वप्रथम ढुंढि [विनायक]-का दर्शन करके कोणविनायक, देवीविनायक, गोप्रेक्षमें प्रसिद्ध हस्तीविनायक तथा अन्य चौथे सिन्दूर नामसे विख्यात विनायकका दर्शन करना चाहिये। इस प्रकार ये पाँच विनायक हैं। इन्हें उद्देश्य करके ब्राह्मणोंको मोदक प्रदान करना चाहिये। इस धर्मकृत्यके द्वारा मनुष्य सिद्धिसे युक्त हो जाता है॥ ५३—५५॥

इसके बाद मैं क्षेत्रकी रक्षा करनेवाली चण्डिकाओंका वर्णन करूँगा। दक्षिणमें दुर्गा, नैर्ऋतकोणमें उत्तरेश्वरी, पश्चिममें अंगारेशी, वायव्यकोणमें भद्रकालिका, उत्तरमें भीष्मचण्डी तथा इसके अनन्तर महामुण्डा रक्षा करती हैं॥ ५६-५७॥

ऊर्ध्वकेशी तथा शांकरी सब ओरसे रक्षा करनेवाली कही गयी हैं। ऊर्ध्वकेशी अग्निकोणमें तथा चित्रघण्टा मध्यमें रक्षा करती हैं॥ ५८॥

हे देवि! जो मनुष्य इन चण्डिकाओंका दर्शन करता है, उसपर प्रसन्न होकर वे सब [चण्डिकाएँ] तत्पर होकर क्षेत्रकी रक्षा करती हैं और हे देवि! उसके पापोंको निरन्तर नष्ट करती हैं। इसलिये हे देवि! यदि कोई वाराणसीमें सतत शुभ स्थितिको चाहता है, तो उसे विनायकोंसहित चण्डिकाओंकी पूजा सदा करनी चाहिये॥ ५९-६०१/२॥

हे सुरेश्वरि! अब मैं उस क्षेत्रमें स्थित अन्य तीर्थोंको बताऊँगा। पवित्र जलवाली तीन नदियाँ वहाँ स्थित हैं और [सदा] प्रवाहित होती रहती हैं, जिनके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है॥ ६१-६२॥

पहली पितामहस्रोता, दूसरी मन्दाकिनी, तीसरी मत्स्योदरी—ये तीनों [नदियाँ] पुण्य प्रदान करनेवाली हैं॥ ६३॥

मन्दाकिनी तथा पुण्या मध्यमेश्वरसंस्थिता।
पितामहस्त्रोतिका च अविमुक्ते तु पुण्यदा॥ ६४

मत्स्योदरी च ओङ्कारे पुण्यदा सर्वदैवतैः।
तस्मिन् स्थाने यदि गङ्गा आगमिष्यति भामिनि॥ ६५

तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः।
वरणासिक्तसलिले जाह्नवी जलमिश्रिते॥ ६६

तत्र नादेश्वरे पुण्ये स्नातः किमनुशोचति।
तस्मिन् काले च तत्रैव स्नानं देवि कृतं मया॥ ६७

पुण्यमयी मन्दाकिनी [नदी] मध्यमेश्वरमें स्थित हैं, पुण्यदायिनी पितामहस्त्रोता अविमुक्तेश्वरमें हैं और पुण्यप्रदा मत्स्योदरी सभी देवताओंके साथ ओंकारेश्वरमें स्थित हैं। हे भामिनि! जब गंगा उस स्थानमें आती हैं, तब देवताओंके लिये भी दुर्लभ वह पुण्यतम काल होता है। वरणाके जलसे सिक्त तथा गंगाके जलसे मिश्रित वहाँ पुण्यप्रद नादेश्वरमें स्नान करके मनुष्यको कौन-सा सन्ताप रह जाता है? हे देवि! उस समय वहींपर मैंने स्नान किया था॥ ६४—६७॥

तेन हस्ततलाद्देवि कपालं पतितं क्षणात्।
कपालमोचनं नाम तत्रैव सुमहत्सरः॥ ६८

हे देवि! उस समय हस्ततलसे क्षणभरमें [मेरा] कपाल गिर पड़ा, उससे वहींपर कपालमोचन नामक एक महान् सरोवर हो गया॥ ६८॥

पावनं सर्वसत्त्वानां पुण्यदं सर्वदेहिनाम्।
ओङ्कारेश्वरनामानं तत्र स्नानं कृतं मया॥ ६९

तेन स प्रोच्यते देव ओङ्कारेश्वरनामतः।
मत्स्योदरीजले गङ्गा ओङ्कारेश्वरसन्निधौ॥ ७०

तदा तस्मिन् जले स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
मत्स्योदरी जले स्नात्वा दृष्ट्वा चोङ्कारमीश्वरम्॥ ७१

शोकमोहजरामृत्युर्न च तं स्पृशते पुनः॥ ७२

सभी जीवोंको पवित्र करनेवाला तथा सभी देहधारियोंको पुण्य प्रदान करनेवाला ओंकारेश्वर नामक जो तीर्थ है, वहाँ भी मैंने स्नान किया था, इसलिये वह लिङ्ग ओंकारेश्वर नामसे पुकारा जाता है। ओंकारेश्वरकी सन्निधिमें मत्स्योदरीके जलमें जब गंगा मिलती हैं, उस समय उस जलमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। मत्स्योदरीके जलमें स्नान करने तथा ओंकारेश्वरका दर्शन करनेसे उस मनुष्यको शोक, मोह, जरा तथा मृत्यु—ये सब स्पर्श भी नहीं करते हैं॥ ६९—७२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

काशीमें लिङ्गार्चनकी महिमा

विष्णुरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो देवी विस्मयोत्फुल्ललोचना।
ओङ्कारदर्शनार्थं वै कपिलेशमुपागता॥ १

विष्णु बोले—यह सुनकर प्रफुल्लित नेत्रोंवाली वे देवी ओंकारेश्वरका दर्शन करनेके लिये कपिलेश्वरमें आ गयीं॥ १॥

तस्मात्त्वमपि देवेशं पूजयस्व सदाशिवम्।
एतत्परममानन्दं प्राप्स्यते परमं पदम्॥ २

अतः आप भी देवेश सदाशिवका पूजन कीजिये, इससे आपको परम आनन्द तथा परम पद प्राप्त होगा॥ २॥

एतच्छ्रुत्वा परं गुह्यं सकाशाच्चक्रपाणिनः।
ओङ्कारमर्चयेद्देवं सदा तद्गतमानसः॥ ३

यह परम रहस्य सुनकर चक्रपाणि विष्णुके पाससे आकर वे शिवमें आसक्तचित्त होकर प्रभु ओंकारेश्वरका अर्चन निरन्तर करने लगे॥ ३॥

सूर्य उवाच

तस्मात्त्वमपि दुर्धर्षमाराधय सुरेश्वरम्।
तेन तत्पदमाप्नोषि यदन्यैरपि दुर्लभम्॥ ४

सूर्य बोले—अतः आप भी दुर्धर्ष सुरेश्वरकी आराधना कीजिये, इसके द्वारा आप उस पदको प्राप्त कर लोगे, जो अन्य लोगोंसे दुर्लभ है॥ ४॥

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा वाराणस्यामुपागतः।
तत्र देवि तदोङ्कारं दृष्ट्वा चैव प्रणम्य च॥ ५
आराधनपरो भूत्वा लिङ्गं स्थाप्य चतुर्मुखम्।
देवदेवसकाशाद्वै कृतकृत्यो भवेच्छुचिः॥ ६
यः सम्प्राप्य महत्तत्त्वमीश्वरे कृतनिश्चयः।
तस्मात्त्वमपि गार्गेय यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि॥ ७
आराधयस्व देवेशं मनसः स्थैर्यमात्मनः।
तस्मिंस्तु यः शिवः साक्षादोङ्कारेश्वरसंज्ञितः॥ ८

भगवान् सूर्यका वचन सुनकर वे वाराणसीमें आ गये और हे देवि! वहाँपर ओंकारेश्वरका दर्शन करके उन्हें प्रणामकर आराधनापरायण होकर देवदेवके पास चतुर्मुखलिङ्गकी स्थापना करके कृतकृत्य तथा पवित्र हो गये और महत्तत्त्वकी प्राप्ति करके ईश्वरमें निश्चय बुद्धिवाले हो गये। अतः हे गार्गेय! यदि आप भी कल्याण तथा अपने मनकी स्थिरता चाहते हैं, तो देवेशकी आराधना कीजिये। जो साक्षात् शिव हैं, वे ही ओंकारेश्वर नामसे उस स्थानमें विराजमान हैं॥ ५—८॥

एतद्गुह्यस्य माहात्म्यं तव स्नेहान्महामुने।
अकारं च उकारं च मकारं च प्रकीर्तितः॥ ९
अस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धो मुनिकालिकवृक्षयः।
अकारस्तत्र विज्ञेयो विष्णुलोकगतिप्रदः॥ १०

हे महामुने! मैंने आपके स्नेहके कारण ही इस लिङ्गके माहात्म्यको बताया है। यह अकार, उकार तथा मकारसे युक्त कहा गया है। मुनि कालिकवृक्षिय इस लिङ्गमें सिद्ध हुए हैं। उसमें अकारको विष्णुलोककी गति प्रदान करनेवाला जानना चाहिये॥ ९-१०॥

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु ओङ्काराख्येति कीर्तितः।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो देवाचार्यो बृहस्पतिः॥ ११

उसके दक्षिणभागमें ही ओंकार नामक लिङ्ग बताया गया है। वहाँ देवाचार्य बृहस्पति परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं॥ ११॥

उकारं तत्र विज्ञेयं ब्रह्मणः पदमव्ययम्।
तस्य चोत्तरदिग्भागे मकारं विष्णुसंज्ञकम्॥ १२
तस्मिँल्लिङ्गे च संसिद्धः कपिलर्षिर्महामुनिः।
तस्मात्त्वमपि गार्गेय मनस्स्थैर्यं यदीच्छसि॥ १३
लिङ्गस्याराधने यत्नं कुरुष्व नियतव्रतः।
विद्यां पाशुपतीं प्राप्य तस्मिन् स्तुत्ये व्यपाश्रयः॥ १४
निर्ममो निरहङ्कारः पदमाप्नोषि शाश्वतम्।

उसमें उकारको ब्रह्माका अव्यय पद देनेवाला जानना चाहिये। उसके उत्तरदिशामें विष्णुसंज्ञक मकारको जानना चाहिये, उस लिङ्गमें महामुनि ऋषि कपिल सिद्ध हुए हैं। अतः हे गार्गेय! यदि आप भी मनकी शान्ति चाहते हैं तो व्रतमें स्थित होकर लिङ्गकी आराधनाके लिये प्रयत्न कीजिये। अनन्यचित्तवाला, मोहरहित तथा अहंकारशून्य होकर उसकी उपासना करनेपर पाशुपतीविद्या प्राप्त करके आप शाश्वत पद प्राप्त कर लेंगे॥ १२—१४$^1/_2$॥

एतच्छ्रुत्वा वचः स्तुत्वा याज्ञवल्क्यस्य दर्शिताः॥ १५
वाराणसीं समभ्येत्य पञ्चायतनमुत्तमम्।
आराध्यमानो देवेशस्तस्मिन् स्थाने स्थितः सदा॥ १६

यह वचन सुनकर याज्ञवल्क्यकी मन्त्रसंहिताओंकी स्तुति करके वे वाराणसीमें आकर उत्तम पंचायतनकी

तस्मादन्येऽपि ये केचिल्लिङ्गस्याराधने रताः।
तेषां वै पश्चिमे काले ज्ञानमुत्पद्यते सदा॥ १७

आराधना करने लगे, उस स्थानमें सबके द्वारा आराधित होनेवाले देवेश सदा स्थित रहते हैं॥ १५-१६॥

अतः जो कोई दूसरे लोग भी लिङ्गकी आराधनामें संलग्न रहते हैं, उन्हें अन्तिम समयमें ज्ञानका उदय हो जाता है॥ १७॥

एवं ज्ञात्वा तु यो मर्त्यः सदा लिङ्गार्चने रतः।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १८

इसे जानकर जो मनुष्य लिङ्गके अर्चनमें सदा रत रहता है, सौ करोड़ कल्पोंमें भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता है॥ १८॥

तस्माद्वै सम्प्रदायाच्च अर्चितव्यं प्रयत्नतः।
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम्॥ १९

लिङ्गं योऽर्चयते विप्र आत्मानं स समुद्धरेत्।
आत्मानं घातयेन्नित्यं यो न लिङ्गं समर्चयेत्॥ २०

अतः विद्युत्-सम्पातके समान चंचल (अस्थिर) दुर्लभ मानवशरीर प्राप्त करके शैवविधानके अनुसार प्रयत्नपूर्वक लिङ्गका अर्चन करना चाहिये। जो विप्र लिङ्गका अर्चन करता है, वह अपना उद्धार कर लेता है और जो लिङ्गका अर्चन नहीं करता है, वह अपनेको विनष्ट कर लेता है॥ १९-२०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

॥ श्रीलिङ्गमहापुराण-परिशिष्ट पूर्ण हुआ॥